सीमित वितरण हेतु प्रकाशित।

देखी सुनी

वर्ष 2011, अंक 18

आखिर दिवारों में ही दरवाजे बनते है।

प्रिय साथियों !

इस बार के अंक में हमने जुटाये हैं कुछ प्रश्न जिन पर सोचने, वाद विवाद करने व आवाज़ उठाने की आवश्यकता है। ये प्रश्न है–औरत के चरित्र निर्धारण के मर्दाना नज़रिये पर, बालिकाओं के साथ होने वाली हिंसा, उत्पीडन, भेदभाव पर, बलात्कार सबंधी मुआवज़े या बधियाकरण जैसे प्रस्तावो पर और बेशर्मी मोर्चे पर।

आशा है आप इन प्रश्नों पर अवश्य चर्चा करेंगे और हमारी खुद की ज़िंदगी से जुड़े फैसलो में भागीदारी निशचित करेंगे। कृप्या अपने सुझाव व प्रतिक्रियायें हम तक अवश्य पहुंचायें।

नीतू रौतेला
जागोरी संदर्भ समूह

मर्दाने चरित्र प्रमाण-पत्र

चरित्र चरमराने से परेशान औरतों में लेखक, साहित्यकार, पत्रकार, बैंकर, अदाकार, कवि, कलाकार, डॉक्टर, इंजीनियर से लेकर भाजी वाली, घरेलू काम वाली, बीपीओ में रात्रि-पाली करने वाली, नर्स, घरवाली, मास्टरनी या बाबूगिरी करने वाली सभी शामिल हैं। अपने समाज में औरत होने का मतलब ही है, दुविधाओं में ग्रस्त रहना। दूसरों यानी पुरुषों के दिये शोक में लिपटी रहना। आचार-व्यवहार पर चरित्र की चाशनी का मुलम्मा चढ़ाये फिरना। पुरुषों ने बेहद चतुराई से स्त्री के चरित्र को हमेशा अपनी दया का मोहताज प्रचारित किया है। औरतों पर त्वरित टिप्पणी कर उनकी छवि बनाने-बिगाड़ने का ठेका वे हमेशा से अपने अंगूठे के नीचे रखने को स्वतंत्र रहे हैं। आज भी उनके लिए यह निर्णय सुनाना कि अमुक लड़की बहुत 'घटिया' है, काफी पौरुषेय दंभ देने वाला होता है। लड़कियों को लेकर पुरुषों में काफी अलग किस्म की शब्दावली प्रयोग होती है, जिसका जिक्र भी करना अभद्रता माना जा सकता है। बुरी, चरित्रहीन, छिनाल, बाजारू, रंडी जैसी शब्दावली इनके लिए आम है। दरअसल, ये आज भी औरत को प्रोडक्ट से ज्यादा नहीं समझते। अपनी बीवी और बच्ची के अलावा इनको बाजार में टहलती, दफ्तर में काम निपटाती, बस में सफर करती, बैंक में नोट गिनती, सड़क पार करती, भाजी-सौदा-सुलभ खरीदती हर औरत का चरित्र गंदा लगता है। जबकि, असलियत यह है कि समाज की सारी औरतों को चरित्र-प्रमाण पत्र बांटने में जुटे ये लोलुप किसी औरत को साफगोई से देखना जानते ही नहीं! मनोविज्ञान चीख-चीख कर अब कहता है कि पुरुषों के दिमाग में हर छठे मिनट पर सेक्स घूमता है। अपनी इस कामुकता पर उनको लगाम लगाने की जरूरत नहीं महसूस होती। मेरी एक पत्रकार मित्र बड़ी आहत हैं, ऐसे ही कुछ उद्दंडी पुरुषों की टिप्पणियों से। हिंदी की एक बड़ी उपन्यासकार भी आहत हो जाती हैं, ऐसी ही छींटाकशी से। ये प्रबुद्ध औरतें हैं। इनकी समाज-परिवार में अपनी पहचान है। अपनी बात भी उचित ढंग से रखने में सक्षम हैं ये। बावजूद इसके, ये उन्हीं दकियानूस जंजालों में उलझ जाती हैं। कोई (पुरुष) हमारे चरित्र का निर्माता कैसे हो सकता है? ऐसी कौन-सी परिस्थितियां हैं, जो हमको उनको निर्णायक मानने पर मजबूर करती हैं? जो पुरुष किसी भी औरत को कपड़ों की तमाम परतों में लिपटी होने के बावजूद अपनी नजरों से नग्न ही निहारता है, उसके बारे में क्या कहा जाए? हम सब औरतों को क्या यह अहसास नहीं है कि पुरुष जब औरतों को देखते हैं तो सबसे पहले उनकी नजरें छाती पर अटकती हैं। वे जुबान से कुछ भी बोलें, पर उनके चेहरे के हाव-भाव पढ़ कर हम समझ ही लेते हैं कि पुरुष मन में क्या चल रहा है।

औरत का पर-पति की तरफ देखना भी पुरुषावली में अनुसार घृणित है परंतु पर-स्त्री को प्रणय-निमंत्रण देने को वे विजेता के तौर पर देखते हैं। पुरुषों को भ्रम है कि उनके जीवन में जितनी औरतें (अंतरंग) आती हैं, उनका पौरुष उतना ही स्ट्रांग होता जाता है। इसकी महिमा बखानते समय उनको ना तो अपने चरित्र के तार-तार होने का भय होता है, ना ही अपनी यौन उच्छृंखलताओं पर किसी तरह की कोई ग्लानि ही। पुरुषों को हमेशा से भ्रम रहा है कि औरतों का वजूद उनकी दया के भरोसे ही धरती पर शेष है। वे औरतों को अपना शिकार मानते हैं और अपने पौरुष को परखने के लिए उनकी देह का इस्तेमाल शौक से करते फिरते हैं। चरित्र को केवल यौन शुचिता से जोड़ने की मासमझी रखनेवालों को माफ करके हम महानता के खांचे में नहीं बने रह सकते। हमको जबरन उनके भ्रम को चकनाचूर करना होगा। उनकी दया को दुत्कारना होगा। साथ ही, उनके झूठे पौरुषेय दंभ को कुचलने में कोई संकोच नहीं करना होगा। सुविधाजनक स्थिति में जीने की इसी आदत के चलते निन्दा-रस के साथ-साथ चरित्र उधेड़ने की रसीली बातों से वे खुद को बचा नहीं पाते। अपने पास यह अधिकार सुरक्षित रखने को लालायित पुरुष 'बुरी' औरतों की श्रेणी में उन्हीं औरतों को रखते हैं, जो उनकी पहुंच से बाहर नजर आती हैं। अद्भुत तर्क तो यह है कि हर मर्द मान कर चलता है कि वे औरतों का चरित्र प्रमाण-पत्र चुटकियों में खड़े-खड़े ही दे सकते हैं। चरित्र चाशनी का यह भ्रम-रस औरतों के दिमाग में इस कदर ठूंस दिया जाता है कि वे इस पर जरा सी खरोच से भी घबरा जाती हैं। यह जानते हुए भी कि इन बातों में तनिक भी दम नहीं है, औरतें कछुए के इस छद्म खोल में खुद को छिपाने की हर पल कोशिश करती हैं। चरित्रवान औरतों की काबिलियत के कशीदे पढ़ने वाले ही कीचड़ उछालने का काम भी करते हैं। पौरुषेय उद्दंडताओं से त्रस्त औरतों की संख्या अकेले दिल्ली में 80 फीसद है जो घर से बाहर निकलने में ही खुद को असुरक्षित मानती हैं। नन्हीं-नन्हीं बच्चियों को पुरुषों की यौन कुंठाओं से बचाने में हमारी तमाम ऊर्जा लग जाती है, बावजूद इसके रोजाना पुरुष उनको हवस का शिकार बनाते हैं। चारित्रिक दोषों से घबराने वाली हमारी मानसिकता कब खत्म होगी, कहना मुश्किल है क्योंकि इसके लिए ना तो सरकारें काम करेंगी और ना ही कोई आरक्षण काम आएगा। यह मानसिक दशा है, प्रेशर बनाने की साजिश। जिससे बचने का काम ऊर्जावान, सक्षम स्त्री को ही करना होगा। मर्दों के गढ़े पैमानों/पैटर्न को उखाड़ फेंकना होगा और भयभीत हुए बिना ही उनको ललकारना होगा।

> खरी-खरी
>
> मनीषा
>
> पुरुषों ने बेहद चतुराई से स्त्री के चरित्र को हमेशा अपनी दया का मोहताज प्रचारित किया है औरतों पर त्वरित टिप्पणी कर उनकी छवि बनाने-बिगाड़ने का ठेका वे हमेशा से अपने अंगूठे के नीचे रखने को स्वतंत्र रहे हैं। आज भी उनके लिए यह निर्णय सुनाना सुनाना कि अमुक लड़की बहुत 'घटिया' है, काफी पौरुषेय दंभ देने वाला है

यह आज की समस्या नहीं है, भगवान राम पीढ़ियों से पुरुषोत्तम हैं यानी समस्त पुरुषों में उत्तम, पर उन्होंने भी अपनी गर्भवती पत्नी सीता के चरित्र पर लगे दोष के आधार पर उन्हें घर निकाला दे दिया था। औरत के 'चरित्र' का पैमाना कौन तय करेगा और कैसे करेगा, यह सब पुरुष ही निर्णय करते रहे हैं। चरित्र को दूध पर पड़ी मलाई बना दिया गया है, जिसको जो चाहे, आकर उतार दे? यह कोई आवरण तो नहीं है कि ढक कर रखा जाए। यह पुरुषवादी प्रपंच की देन है जिसने औरतों को मुट्ठी में भींचे रखने की चतुराई में गढ़ा है। पांच पतियों के साथ रहने वाली द्रौपदी चरित्रवान है, मॉडल से हीरोइन बनी पायल रोहतगी ने ज्यों ही फिल्म डायरेक्टर दिबाकर बनर्जी पर कास्टिंग काउच का आरोप लगाया तो सारा मीडिया (पुरुषवादी) अचानक फायर-बैक करने में जुट गया। सुधीर मिश्रा जैसा संवेदनशील नजर आने वाला गंभीर फिल्मकार बनर्जी की तरफदारी करने लगा। यह सच है कि आज की तारीख में पायल जाना-माना चेहरा है, वह चतुर है। उसको काम पाना आता है पर इसका यह मतलब तो नहीं कि उसके साथ जो हुआ, वह सिर्फ पब्लिसिटी स्टंट था। फिल्मवाले तो प्रचार के नाम पर ना जाने क्या-क्या करने को पहले से ही तैयार रहते हैं। कुल मिलाकर, सारे आरोप अकेली लड़की पर मढ़ने की यह घिनौनी सोच कब बदलेगी? लड़कियों को अपना चरित्र संभाल कर रखना चाहिए, पर लड़कों को यह पाठ पढ़ाने की जरूरत क्यों नहीं होनी चाहिए? ठंडा पेय बेचने वाली मल्टीनैशनल कंपनी विज्ञापन करती है कि अपनी गर्ल फ्रेंड के सामने दूसरी लड़कियों को कैसे ताको, पर उनमें इतना साहस है कि वे कहें कि किसी दूसरे मर्द को कोई ब्याहता कैसे देखेगी, क्योंकि यह फार्मूला पुरुष-विरोधी है, प्रोडक्ट की बिक्री पर इसकी निगेटिविटी दिख जाएगी। टीवी पर आने वाले सारे सीरियल्स यही बेचते हैं ना कि बुरी औरतें दूसरों के पतियों का शिकार करती हैं, जबकि भली औरतें पति से प्रताड़ित होने के बाद भी रोती-बिसुरती घुटती रहती हैं। यह सच है कि पुरुषों को छलने, उनको प्रलोभन देने, अपना काम बनाने और उनको बेवकूफ बनाने के लिए कुछ भी करने की उतावली में जनाना चालबाजी आम है। पर यह दुतरफा खेल है, यहां ना कोई कीचड़ है, ना कमल। यहां दोनों सेफ (एक) चरित्र हैं। 50-50, आपसी सहमति से बनाया गया कोई भी संबंध बेमानी नहीं होता। हां यह गेट-टु-गेदर होता है, लाभ-अलाभ इसी में शामिल होते हैं। इसमें दोनों बराबरी से भागीदारी करते हैं इसलिए चरित्र केवल स्त्री का धूमिल हो, यह बात जमती नहीं। स्त्री को चरित्र में उलझा कर, पुरुष के भाग्य भरोसे छोड़ने वाली चतुराई के दिन पूरे हो चुके हैं। पुरुष को चरित्र-पूफ बनाये रखने की साजिश और परिवार का भाग्यविधाता होने का भ्रम अब खत्म हो चुका है। औरतें बेहद चतुराई से पुरुषों का चरित्र-हरण करके अपना भाग्य बनाने की राह पर निकल चुकी हैं। उनको खोने के दर्द से ज्यादा आनन्द 'झपटने' का है।

बंदिशों की चुभन

आज भी अपने यहां बेटी का पैदा होना अनचाहा ही होता है। बिहार और राजस्थान के तमाम इलाकों में नवजात लड़कियों को मारने वाली दाइयों का दबदबा रहा है। कुछ पैसों के लोभ में ये पैदा होते ही बच्ची को मारने की विशेषज्ञ बन जाती हैं। इस भयानक समाज में इन्हीं दरिंदों के बीच उसको सारा जीवन काटना है। जैसा पालन किया जा रहा है वह तो इनको हमेशा किसी मजबूत सहारे को तलाशने को छोड़ने वाला है

लड़कियों के मामले में अपना समाज कितनी लिजलिजी सोच रखता है, यह बार-बार याद दिलाने की जरूरत क्यों पड़ती है? एक करोड़ दस लाख परित्यक्त बच्चों में 90 फीसद लड़कियां होती हैं। सिंगल मदर या कुंवारी मांओं को लेकर उपेक्षाभाव रखने वालों से यह सवाल पूछा जाना जरूरी है कि वैवाहिक संबंधों की मजबूत बेड़ियां भी अपनी नन्हीं बच्चियों को सुरक्षा क्यों नहीं दे पा रही हैं? केवल मादा भ्रूणहत्या को लेकर बयानबाजी करते रहने, पोस्टर छापने, अखबारों में सरकारी विज्ञापन देने से बच्चियों को बचाने का ढोंग करने वाली सरकार को यह क्यों नजर नहीं आता? उसी समय सुप्रीम कोर्ट मान रहा है कि हमारी इतनी ज्यादा लड़कियां परिवारवालों द्वारा छोड़ दी जाती हैं। खोये हुए बच्चे भी अपने यहां तभी मुस्तैदी से ढूंढे जाते हैं, जब वे संपन्न घरों से आते हों। गरीब के बच्चे को ढूंढ निकालने में किसी की कोई दिलचस्पी नहीं होती। उनके गुम हो जाने पर ना तो बड़ी प्रेस कांफ्रेस होती है, ना ही मीडिया कैमरों के साथ उमड़ता है। आज भी अपने यहां बेटी का पैदा होना अनचाहा ही होता है। बिहार और राजस्थान के तमाम इलाकों में नवजात लड़कियों को मारने वाली दाइयों का दबदबा रहा है। कुछ पैसों के लोभ में ये पैदा होते ही बच्ची को मारने की विशेषज्ञ बन जाती हैं। दोष इन दाइयों का नहीं है, ये तो मात्र घरेलू प्रसव विशेषज्ञ होती हैं, अपनी गरीबी और लोभ के चलते ये चांडाल का काम करने लगती हैं। मेरा मानना है, इनको कोसने से समाज नहीं बदल सकता। जैसे 'बेटी बचाओ' का स्लोगन बच्चियों को मरने से नहीं रोक पाया, उल्टे उसने बच्चियों के त्याग का एक और संवेदनहीन तरीका अख्तियार कर लिया है जिसमें परिवार खुद को जान लेने के पाप से मुक्त मान लेता है।

बस में, रेल-यात्रा के दौरान, मेले-ठेले में छोटी लड़कियों को छोड़ कर भाग निकलने वाले मां-बाप को आप क्या कहेंगे? दकियानूस विचारधारा और सामाजिक ढोंगों ने मानसिकता ही इतनी घटिया कर दी है कि संवेदन-शून्यता हावी होती जा रही है। बेटे की चाह में लड़कियों की लाइन लगाने वाले दंपति सिर्फ नासमझ ही नहीं होते, उनके भीतर की भावनाएं भी मर चुकी होती हैं। मादाओं के प्रति होने वाली उपेक्षा जब वैश्विक पटल पर घृणित-दृष्टि से देखी जाती है तो घबरा कर सरकारें उपाय ढूंढने का ढोंग करने लगती हैं। मादा भ्रूणहत्याओं को रोकने के नाम पर सरकार पैसा ही नहीं लुटा रही विदेशों से भी मोटी सहायता खींची जाती है, जबकि असलियत तो यही है कि लड़कियों को गर्भ से निकाल कर ना मारा जाए तो भी जन्मते ही गला घोंट दिया जाता है या फिर ऐसे ही मरने के लिए छोड़ दिया जाता है। दो-चार औरतों की तरक्की को नमूने के तौर पर पेश कर अपना फेस सेव करने वालों की अक्ल मारी गई है उनको यह सब हकीकत नहीं नजर आती। जो परिवार लड़कियों को कहीं छोड़ने का साहस नहीं कर पाते वे बहुत छोटी ही उम्र में उनको ब्याहते हैं ताकि उनका बोझ कुछ कम हो सके। इनको स्कूलों में नहीं डाला जाता अक्षर ज्ञान तक नहीं कराया जाता। छोटी ही उम्र में चूल्हा फूंकने, जलावन ढूंढ कर लाने, दूर किसी सार्वजनिक कुएं/जलाशय से पानी ढोकर लाने या ढोर चराने की जिम्मेदारी सौंप दी जाती है। घर के छोटे बच्चों को पालना इनका नैतिक दायित्व बन जाता है, रोटी पकाने, बासन धोने, घास छीलने को ही ये अपना मनोरंजन समझ लेती हैं।

खबर है, मेरठ में एक गरीब बाप अपनी दो लड़कियों को घर में कैद किये है, यह सुनकर अजीब लग सकता है पर उसकी बेचारगी इस घिनौनी-व्यवस्था का नमूना है। वह कहता है कि बच्चियां विक्षिप्त हैं और इलाज कराने के लिए उसके पास पैसा नहीं है इसलिए वहशी दरिंदों से इनको बचाने का उसको यह सस्ता-टिकाऊ तरीका लगा। परिवारों की प्रशस्ति करने वालों और पश्चिमी समाज का मखौल उड़ाने वालों से पूछा जाना चाहिए कि सभ्य समाज की हकीकत यही है क्या? यह सरकार की लाचारी है कि वह दुनियाभर में अपनी सस्ती चिकित्सा सुविधाओं के लिए प्रसिद्धि पा रही है, पर गांव/कस्बे में लोग पैसों के अभाव में लाइलाज ही मरते जा रहे हैं। बेटी को सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी के लिए इसी बाप ने अपनी बेटी को कैद नहीं कर रखा है। संभ्रांत दिखने वाले पढ़े-लिखे, शहरी भी अपनी नन्हीं बच्चियों को दरिंदगी से बचाने के लिए कुछ ऐसा कर रहे हैं। इनमें से कोई भी अन्ना हजारे की तरह आंदोलन नहीं करना चाहता। कोई जुबान नहीं हिलाता पर सबको अपनी बेटी की फिक्र है।

कहीं सुरक्षाकर्मी बने दादाजी बस स्टॉप तक जा रहे हैं, कहीं मां धूप में झुलस रही है। खेल का मैदान हो या परिवहन, मां की चौकसी बढ़ती जा रही है। वह बच्ची से उसकी स्वतंत्रता किसी जालिम की तरह छीन रही है। समाज में छुट्टा घूमते बलात्कारी भेड़ियों से अपनी बच्ची को बचाये रखने का यह भय किस समाज को रच रहा है? बच्चों के एक बहुत अच्छे स्कूल के गेट पर हर रोज मैं एक मां को सुबह और दोपहर सीखचों के पार से अपनी बिटिया को ताकते देखती हूं। स्कूल की बिल्डिंग में जब तक वह घुस ना जाए, तब तक वह ऐसे ही एकटक उसको ताकती नजर आती है, दोपहर को छुट्टी से कुछ पहले ही आकर वह गेट पर मुस्तैद हो जाती है। सालों से यह नजारा मैंने देखा है और इस व्यवस्था के घिनौनेपन से घृणा से भरा पाया है खुद को, जहां अपने बच्चे को सुरक्षित माहौल नहीं दे पा रहे हम। बेटी की 'बॉडी गार्ड' बन चुकी इस मां की भावनाओं पर कोई संदेह नहीं कर रही मैं, पर कोई यह भी सोचेगा कि उस बच्ची की गुलामी, सुरक्षा के नाम पर बंधनों की यह जकड़न उसको भीतर से कितना कमजोर कर रही है? सिर्फ गरीब और साधनहीन मांओं की ये दिक्कतें नहीं हैं, यही झेलना पड़ता है, विशाल बंगले में सुरक्षा गार्डों और नौकरों से चाक-चौबन्द मां को भी। आरुषी और हेमराज की मौत के पीछे मां तलवार की घोर लापरवाही को मैंने कभी नकारा नहीं है। युवा होती बेटी को पुरुष नौकर के भरोसे छोड़ना किसी भी एंगल से सामान्य नहीं कहा जा सकता, तब भी जब वह सालों से आपका विश्वसनीय रहा हो।

खरी-खरी

मनीषा

स्त्री-पुरुष के दरम्यान कब- क्या घटित हो जाए, कहा नहीं जा सकता पर पुरुष के भीतर का हैवान कन्या पर कभी भी सवार हो सकता है, इस पर डाउट नहीं किया जा सकता! छोटी बच्चियों पर होने वाले यौनाक्रमणों के अपराधी 80 फीसद जान-पहचान वाले या रिश्तेदार ही होते हैं। लेकिन पुरुषों की इन घिनौनी मानसिकता से बच्चियों को बचाने के लिए ना तो बेड़ियां कारगर हो सकती हैं, ना ही ताले। पाबंदियों से उसका आत्मविश्वास और साहस कुचला ही नहीं जा रहा, उसको इन्हीं बच्चियों की तरह बेबस भी बनाया जा रहा है, जिनको त्याग दिया जाता है। ये बेसहारा छोड़ दी गई उपेक्षित हैं, अकेली हैं, इनकी सुध लेने वाला कोई नहीं। और सुरक्षित रखने के नाम पर जिनकी मानसिक प्रताड़ना चल रही है, दम घुट रहा है। निजता को चूर-चूर किया जा रहा है। दोनों के मन एक बराबर कमजोर बनाये जा रहे हैं। दोनों ही घुटन में हैं। दोनों ही असहाय और बेचारगी जी रही हैं। इन सबकी मुक्ति के उपाय कौन करेगा? किसको फिक्र है इनकी? इस भयानक समाज में इन्हीं दरिंदों के बीच उसको सारा जीवन काटना है। जैसा पालन किया जा रहा है, वह तो इनको हमेशा किसी मजबूत सहारे को तलाशने को छोड़ने वाला है। आश्रित बना रहा है इनको। मानसिक रूप से भी और दैहिक रूप से भी। यह है इस मक्कार समाज का सच, जहां कुछ लोग बेटी को त्यागने को बेबस किये जा रहे हैं तो कुछ मानसिक/भावनात्मक रूप से उसका दम घोटने को मजबूर हैं।

बच्चियां परित्यक्त हों या पाबंदियों तले जीने को मजबूर, इसका दोषी है यह समाज, जिसे कुछ लोग सभ्य कहते शर्माते नहीं। कुछ मां-बाप घबरा कर उन्हें फुटपाथ पर या कचरे ढेर में फेंकने को मजबूर हैं तो कुछ हर वक्त उन पर छतरी के तरह छाये रहने को मजबूर। ऐसे में कैसे होगा उनका विकास। कैसे आयेगा उनको पंख फैला कर उड़ना। कैसे सीखेंगी वे अपनी शख्सियत को तराशना। फिर बहाने करेंगे, बेटे की दीवानगी के। लैंगिक विभेद के जितने बारीक और खतरनाक कांटें अपने यहां बिछे हैं, उतने शायद ही किसी समाज में होंगे। जिनको ढांपने का ढोंग करने वाले कभी उस पीड़ा को समझे भी नहीं सकते, जिनकी चुभन नन्हीं बच्चियां और उनके परिवार हर रोज झेलते हैं।

बच्ची से उसकी स्वतंत्रता किसी जालिम की तरह छीन रही है

कम होती बच्चियां

लगातार गिरता बाल लिंग अनुपात, खासकर छह साल की उम्र में प्रति 1,000 बालकों की तुलना में गिरती बालिकाओं की संख्या, इसका सुबूत है कि हमारे देश में गर्भस्थ शिशु का लिंग पता करने की दुष्प्रवृत्ति को रोकने से संबंधित कानून कितना लचर है। छह साल तक के आयु वर्ग में बालिकाओं का घटता अनुपात दरअसल कन्या भ्रूणहत्या का नतीजा है, जो गर्भस्थ शिशु के लिंग की जांच का परिणाम है। देश के दो अपेक्षाकृत समृद्ध राज्यों, पंजाब और हरियाणा, में लिंगानुपात सबसे खराब है। इससे यह पता चलता है कि राष्ट्रीय राजधानी के नजदीक भी गर्भस्थ शिशु के लिंग की जांच के खिलाफ कानून व्यावहारिक तौर पर कितना लचर है।

वर्ष 1961 में छह वर्ष तक के आयु वर्ग में प्रति 1,000 बालकों पर 978 बालिकाएं थीं। वर्ष 2001 तक आते-आते प्रति हजार बच्चों पर बच्चियों की संख्या घटकर 727 रह गई थी। 2011 की ताजा जनगणना में यह अनुपात और कम होकर 914 रह गया है। हालांकि कुल मिलाकर स्त्री-पुरुष अनुपात में ऐसी कमी नहीं आई है। वर्ष 1961 में प्रति 1,000 पुरुष पर 941 महिलाएं थीं, जबकि 2011 की जनगणना में प्रति हजार पुरुष पर 940 महिलाएं हैं। 1980 तक छह वर्ष के आयु वर्ग में भी प्रति हजार बालक पर बालिकाओं की संख्या आज की तुलना में कहीं अधिक थी। इसलिए जनसंख्या में बालिकाओं का घटता अनुपात चिंताजनक है।

छह साल तक के आयु वर्ग में बालिकाओं का घटता अनुपात दरअसल कन्या भ्रूणहत्या का नतीजा है, जो गर्भस्थ शिशु के लिंग की जांच का परिणाम है।

सरोकार

मधु पूर्णिमा किश्वर

इन विरोधाभासी प्रवृत्तियों की एक वजह शायद यह है कि गर्भस्थ शिशु की लिंग जांच के बाद भ्रूणहत्या कर परिवार जहां अवांछित बच्चियों से छुटकारा पा लेते हैं, वहीं वे ही बच्चियां जिंदा रहती हैं, जिन मां बापों को बेटियों की चाह होती है; ऐसे में इन बच्चियों की बेहतर देखभाल होती है। चूंकि पुरुषों की तुलना में स्त्रियां अधिक मेहनती और लचीली होती हैं, इसलिए अगर पोषण और स्वास्थ्य के मोरचे पर उनसे भेदभाव न हो, तो अधिक उम्र तक जीती हैं।

2001 से 2011 के बीच बुजुर्गों के लिंगानुपात में आई मामूली गिरावट आई है, तो उसकी वजह शायद यह है कि अपने यहां मध्य आयु के पुरुषों की मृत्यु दर अधिक है। उदाहरण के लिए, मध्य आयु वर्ग में हार्ट अटैक से मरने वाले पुरुषों की संख्या स्त्रियों की तुलना में कहीं अधिक है। भारतीय महिलाओं की तुलना में भारतीय पुरुष मोटापे से जुड़ी बीमारी, मद्यपान, धूम्रपान और ड्रग्स जैसी रहन-सहन से संबंधित आदतों के शिकार ज्यादा होते हैं।

रहन-सहन से जुड़ी बुरी आदतों को दूर करना आसान है लेकिन छह वर्ष तक के आयु वर्ग में बालिकाओं की संख्या में आई गिरावट जिस सामाजिक विकृति का नतीजा है, उसका कोई आसान समाधान नहीं है। अगर सरकारी अधिकारियों, खासकर आईएएस अधिकारियों, पुलिस अधिकारियों और सांसदों, विधायकों, पंचायत सदस्यों और पार्षदों के परिवारों की अलग जनगणना हो, तो बेहद दिलचस्प नतीजे आएंगे। इनका लिंगानुपात राष्ट्रीय अनुपात से कम ही होगा। अगर समृद्ध तबकों में कन्या भ्रूणहत्या रोकने के लिए सरकार सख्त कानून लागू करे, तो संभवतः बेटे की चाह रखने वाली रुग्ण मानसिकता पर अंकुश लगाया जा सकेगा।

edit@amarujala.com

पश्चिम यूपी (प्रति एक हजार पुरुषों में)	सेक्स रेश्यो	मानव विकास सूचकांक
बागपत	850	0.62
गाजियाबाद	854	0.66
नोएडा	854	0.70
मेरठ	857	0.63
मुजफ्फरनगर	859	0.59

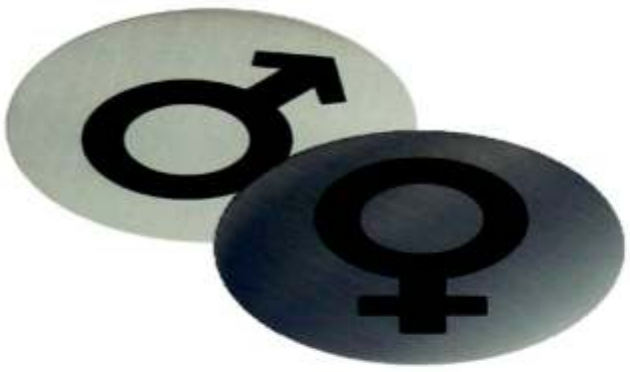

भ्रूण हत्या रोकने के लिए बनाए गए कानून

- बिना पंजीकरण के क्लीनिक द्वारा अल्ट्रासाउंड करने पर - तीन साल की सजा या 50 हजार रूपए का जुर्माना।
- क्लीनिक में बेयर एक्ट (कानून की पुस्तक) नहीं रहने पर - तीन साल की सजा या 10 हजार का जुर्माना।
- 'प्रसव पूर्व लिंग निर्धारण करना कानूनन अपराध है' का बोर्ड नहीं लगे होने पर- तीन साल की सजा या 10 हजार का जुर्माना।
- लिंग निर्धारण करने पर- पांच साल की सजा और एक लाख का जुर्माना।

अजन्मी बेटियों के खून से रंगा समाज

मेधा

लेखिका स्वतंत्र पत्रकार हैं।

पिछले एक दशक में अजन्मी बेटियों को मारने की रफ्तार बहुत अधिक बढ़ गई है। भ्रूण हत्या से संबंधित तथ्य समाज में स्त्रियों की दयनीय दशा को केवल आर्थिक कारणों से जोड़ने के मिथक का भी खंडन करते हैं।

वर्ष 2011 की जनगणना के अनंतिम आंकड़े सामने आ चुके हैं। उन आंकड़ों ने पिछले एक दशक में देश के भीतर हुए कई संगत-असंगत बदलावों को सामने लाने का काम किया है। कुछ आंकड़े दिल को थोड़ा बहुत दिलासा देने का काम कर रहे हैं, मसलन महिला साक्षरता में हुई वृद्धि। लेकिन उन आंकड़ों का बाहुल्य ज्यादा है, जो देश की विषमता की भयानकता की ओर इशारा करते हैं। उनमें से एक है- छह वर्ष तक की उम्र के बच्चों के लिंगानुपात में आई कमी। बाललिंगानुपात में आजादी के बाद की सबसे बड़ी गिरावट पिछले दस वर्षों में हुई है। वर्ष 2011 की जनगणना में छह वर्ष से कम उम्र के प्रति हजार लड़कों पर लड़कियों की संख्या 914 है; जो कि वर्ष 2001 में 927 थी।

केंद्रीय गृह सचिव जीके पिल्लई ने स्वीकार किया है कि पिछले चालीस साल से अपनायी जा रही नीतियों का कोई असर लिंगानुपात पर नहीं हुआ है। लिंग निर्धारण आधारित गर्भपात और लिंगानुपात में अंतर पर किए गए एक अध्ययन के अनुसार कन्या भ्रूण हत्या के लिए गरीबी कतई भी जिम्मेदार नहीं है। गांव की बनिस्पत शहरों में और निम्न तथा मध्यम वर्ग की अपेक्षा उच्चवर्ग में लिंग निर्धारण के बाद गर्भ गिराने का प्रचलन अधिक है।

पिछले एक दशक में अजन्मी बेटियों को मारने की रफ्तार बहुत अधिक बढ़ गई है। भ्रूण हत्या से संबंधित तथ्य समाज में स्त्रियों की दयनीय दशा को केवल आर्थिक कारणों से जोड़ने के मिथक का भी खंडन करते हैं। इन तथ्यों से यह भी उजागर होता है कि तकनीक को आधुनिक मूल्यों से जोड़ कर देखना और उसे विकास की अनिवार्यता मानना भी एक तरह का छलावा है; क्योंकि कन्या भ्रूण हत्या सबसे अधिक वहीं हो रहे हैं, जहां आर्थिक संपन्नता के साथ आधुनिक तकनीक का गठजोड़ है।

एक अनुमान के मुताबिक पिछले बीस सालों में कन्या भ्रूण हत्या के कारण लगभग एक करोड़ बच्चियों की जन्म से पहले ही हत्या कर दी गई। और इस कारनामे को सबसे ज्यादा आर्थिक दृष्टि से संपन्न राज्य हरियाणा, पंजाब और दिल्ली में अंजाम दिया जा रहा है। इस सोच की बुनियाद खोजनी हो तो इसे स्त्री के विरुद्ध परंपरा में मौजूद तत्वों में तो देखना ही चाहिए, लेकिन आज की स्थितियों में भी टटोलना चाहिए, जब किसी भी रूप में धन बटोरना जीवन की सार्थकता का एकमात्र पैमाना बनता जा रहा है।

शायद यही वजह है कि अब तक भारतीय मानस लैंगिक क्रूरता से नहीं उबर पा रहा है, वर्ना थोड़ा पीछे मुड़कर हम इतिहास में झांक कर देखें तो पता चलेगा कि स्त्रियों की दशा को सुधारने के मकसद से प्रयास तो बरसों से चल रहे हैं। बाल विवाह विरोध, विधवा विवाह, सती प्रथा विरोध, स्त्री-शिक्षा के साथ ही भ्रूण हत्या के खिलाफ अभियान तो उन्नीसवीं सदी के सुधार आंदोलन से ही चलाया जा रहा है।

आजादी के बाद संविधान में लैंगिक बराबरी का वादा किया गया। लैंगिक समानता और सुरक्षा से जुड़े कानून बनाए गए। वैश्विक समुदाय के समक्ष स्वयं को निरंतर विकासशील और आधुनिक साबित करने के लिए ऐसा करना जरूरी था। लेकिन आजाद भारत की सरकारें एवं समाजों में आचरण के स्तर पर बहुधा उस इच्छाशक्ति का अभाव नजर आता है; जो वास्तविक स्तर पर स्त्री को पुरुष के समान दर्जा देने की हिमायती हो।

कह सकते हैं कि भारतीय समाज ने मानसिक रूप से स्त्री को बराबरी का दर्जा नहीं दिया। तभी तमाम कानून बन जाने के बाद भी तकनीकी मदद से स्त्रियों के प्रति जन्म से पूर्व और जन्म के बाद हिंसा के नित नए तरीके अपनाए जा रहे हैं। भारतीय समाज ने आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल लैंगिक क्रूरता के पुराने स्थूल रूपों को सूक्ष्म रूपों में तब्दील करने के लिए किया है। 2011 की जनगणना के बाद कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के मकसद से बनाए गए पीएनडीटी कानून पर बहस तेज हो गई और उसमें बुनियादी परिवर्तन की मांग उठायी जा रही है। इस कानून का उल्लंघन करने वालों को बहुत ही मामूली सजा का प्रावधान है। कई स्वयंसेवी संस्थाएं इस कानून में संशोधन कर दोषी को अधिकतम उम्रकैद की सजा देने की मांग कर रही हैं। ऐसा किया जाना स्वागतयोग्य होगा। इससे कुछ हद तक अजन्मी कन्याओं की हत्या को कम किया जा सकेगा। पर इस तरह की कोशिशें रोग के लक्षण को समाप्त करने के उपाय हैं। रोग के मूल को इससे नष्ट नहीं किया जा सकता। और रोग का मूल भारतीय समाज के मानस में हैं, जो लैंगिक गैरबराबरी से बना है। इस मानसिकता पर चोट किए बिना न तो कन्या भ्रूण हत्या न ही घरेलू हिंसा और न ही किसी अन्य किस्म की लैंगिक अमानवीयता पर काबू पाया जा सकता है।

medhaonline@gmail.com

बाल यौन उत्पीड़न का घिनौना सच

प्रदीप कुमार
लेखक पत्रकार हैं।

देश के पर्यटन केंद्र बच्चों के शिकार के ठिकाने के तौर पर पहले से मशहूर थे, अब यह अपराध खुले आकाश से लेकर चारदीवारियों के पीछे हर जगह हो रहा है। हकीकत यही है कि देश का हर दूसरा मासूम किसी न किसी यौन उत्पीड़न का शिकार है।

बीते शुक्रवार को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के दो स्कूलों से शर्मसार करने वाली घटनाएं सामने आईं। पहली घटना नोएडा के सेक्टर-33 स्थित एक स्कूल की है, जहां बच्चों ने आरोप लगाया है कि एक शिक्षक उनके कपड़े उतरवाकर अश्लील हरकतें करता था। दूसरा मामला गाजियाबाद के नगर-3 स्थित एक प्ले स्कूल का है, जिसमें एक डांस टीचर द्वारा बच्चों से अश्लील हरकत करने का मामला प्रकाश में आया है। ये दोनों घटनाएं बताती हैं कि हमारे समाज में बच्चों का यौन शोषण कहीं भी हो सकता है और कोई भी यह कर सकता है।

देश के पर्यटन केंद्र बच्चों के शिकार के ठिकाने के तौर पर पहले से मशहूर हो ही रहे थे, अब यह अपराध खुले आकाश से लेकर चारदीवारियों के पीछे हर जगह हो रहा है। यकीन नहीं होता है, लेकिन हकीकत यही है कि देश का हर दूसरा मासूम किसी न किसी यौन उत्पीड़न का शिकार है। महिला और बाल विकास मंत्रालय की रिपोर्ट के मुताबिक देश में आधे से ज्यादा बच्चे (53.22 फीसदी) यौन उत्पीड़न के शिकार हैं।

देश भर में बच्चों के साथ यौन उत्पीड़न के मामले लगातार इसलिए भी बढ़े हैं, क्योंकि इस पर अंकुश लगाने के लिए देश में कोई खास कानून नहीं है। ऐसे मामलों की सुनवाई भारतीय न्याय संहिता (आईपीसी) के तहत होती है, जिसमें महिलाओं के साथ बलात्कार के मामलों पर तो कठोर कार्रवाई की व्यवस्था है, लेकिन बच्चों के साथ यौन अपराध पर ठोस कार्रवाई में यह कारगर नहीं हो पाता, क्योंकि बाल यौन उत्पीड़न के कई रूप हैं और कई तो मौजूदा कानून के तहत अपराध में भी नहीं गिने जाते। खासकर लड़कों के साथ हुए यौन अपराध के मामलों को इस कानून के तहत गंभीरता से नहीं लिया जाता। लेकिन यह देखा गया है कि लड़के और लड़कियों का यौन शोषण लगभग बराबर ही होता है। स्कूलों और स्वास्थ्य केंद्रों में यौन शोषण के लगातार बढ़ते मामले और पर्यटन इलाकों में भी ऐसे मामलों के सामने आने से अलग से कानून की मांग रही है। कानून मंत्रालय ने इस पर लगाम कसने के उद्देश्य से एक मसौदा तैयार किया है।

प्रस्तावित विधेयक में बाल यौन अपराध की संगीनता को देखते हुए इसे पांच स्तरों में बांटा गया है, जिसमें मौखिक छींटाकशी से लेकर अप्राकृतिक यौन उत्पीड़न तक को शामिल किया गया है। इसके तहत तीन साल से लेकर उम्रकैद की सजा के प्रावधान किए गए हैं। शारीरिक या मानसिक रूप से विकलांग बच्चों के साथ यौन उत्पीड़न को गंभीर अपराध की श्रेणी में रखा गया है। प्रस्तावित विधेयक में बाल यौन अपराध लिंग भेदभाव से परे है। इसमें इस बात का पूरा खयाल रखा गया है कि पीड़ितों की पहचान गोपनीय रहे और उन्हें जल्द से जल्द न्याय मिले। कानून के लागू होने की सूरत में देश के प्रत्येक जिले में विशेष अदालत और अभियोजन पक्ष का होना सुनिश्चित किया जाएगा। इसके तहत पीड़ितों से एक महीने के अंदर सारे सबूतों का संज्ञान लिया जाएगा और हर हाल में एक साल के अंदर सुनवाई पूरी होगी।

इतना ही नहीं, आजकल जिस तरह से इंटरनेट पर बच्चों के यौन उत्पीड़न के मामले बढ़ रहे हैं, उसे भी मसौदे में शामिल किया गया है। पिछले दिनों मुंबई में एक सर्वेक्षण में यह बात सामने आई है कि इंटरनेट का उपयोग करने वाले प्रत्येक 10 में 7 बच्चे यौन उत्पीड़न का शिकार बन सकते हैं। जिस तरह से इंटरनेट का उपयोग देशभर में बढ़ रहा है, उसे देखते हुए इसकी चपेट में आने वाले बच्चों की संख्या बढ़ेगी। प्रस्तावित कानून के तहत बाल यौन उत्पीड़न मामले की सुनवाई करने वाली विशेष अदालतों में ही इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी एक्ट के तहत आने वाले बाल यौन उत्पीड़न मामलों की सुनवाई होगी।

प्रस्तावित मसौदे में 18 साल से कम उम्र के बच्चों के साथ यौन उत्पीड़न के मामलों को अपराध माना जाएगा, हालांकि इसमें इसका प्रावधान भी है कि 16 साल से अधिक उम्र का बच्चा आपसी सहमति से किसी से भी वैध शारीरिक संबंध बना सकता है। बाल यौन उत्पीड़न के ज्यादातर मामलों में अपराधी निकट संबंधी, परिचित और जान पहचान वाले लोग होते हैं। ऐसे में जरूरी है कि माता-पिता में बाल यौन उत्पीड़न को लेकर जागरूकता हो और वे अपने बच्चों को मानसिक तौर पर इसका विरोध करना सिखाएं।

मसौदे के मुताबिक बाल यौन उत्पीड़न के आरोपियों को खुद के निर्दोष होने का सबूत देना होगा। इस लिहाज से यह कानून एक कारगर कदम हो सकता है।

pradeep_news@rediffmail.com

किशोरी काया में ढालने की अमानवीय प्रयोगशालाएं

यदि परिवार वालों की सहमति से कुछ हो भी रहा है तो उसकी संख्या नगण्य है। इस सम्बंध में पुलिस जो भी तर्क दे लेकिन अपहरण और इस तरह के धंधे के फलने-फूलने के पीछे उसकी लापरवाही ही एक बड़ी वजह है। बात राजधानी की करें तो सिर्फ मार्च महीने में 153 लड़कियों के लापता होने का मामला दर्ज हुआ है। जब राष्ट्रीय राजधानी का आलम यह है फिर छोटे शहरों और गांवों में लड़कियों की सुरक्षा का तो ऊपरवाला ही मालिक है

■ **आशीष कुमार 'अंशु'**
स्वतंत्र पत्रकार

साल 2003 में जन्मी आठ साल की उस बच्ची का नाम साहिन, सकीना या जौहर कुछ भी हो सकता है। लेकिन उसकी कहानी सच्ची है। वह मेरठ में है। उसे याद नहीं कि वह कब यहां लाई गई। जबसे उसने होश संभाला है, खुद को उसने मेरठ के देह व्यापार की तंग गलियों में ही पाया है। उस आठ साल की लड़की तक मेरठ के एक एनजीओ की मदद से पहुंचा। उस लड़की के जन्म का साल 2003 है लेकिन उससे मिलने के बाद वह आपको किसी भी तरह से आठ साल की छोटी बच्ची नजर नहीं आती। वह चौदह-पंद्रह साल की किशोरी की तरह दिखती है। उसके बातचीत और सोचने का अंदाज छोटी बच्ची की तरह है। पता नहीं आठ साल की उम्र में बच्चे होश संभाल पाते हैं, या नहीं। वह जैसी दिखती है, वह है नहीं। यह उस एनजीओ के कार्यकर्ताओं ने बताया। आठ साल की वह लड़की ऑक्सीटॉक्सिन के इंजेक्शन की वजह से सोलह साल की हुई है। मेरठ में उसे तैयार किया जा रहा है।

दलालों का तगड़ा नेटवर्क

एक एनजीओ की तरफ से मेरे साथ आई कार्यकर्ता की मानें तो मेरठ में इस तरह के कई मामले हैं। समय-समय पर धड़-पकड़ भी होती है। बातें मीडिया में आती हैं। बरामदगी के कुछ दिनों के बाद उस बच्ची की याद न मीडिया को रहती है, न गैर सरकारी संस्था को, और न ही पुलिस को। वह बच्ची अगर मेरठ में पकड़ी गई थी तो उसके बाद वह आगरा पहुंच जाएगी। कुल बातचीत में इशारों-इशारों में उन कार्यकर्ता ने बता दिया कि पुलिस, एनजीओ और प्रेस से अधिक चुस्त-दुरुस्त नेटवर्क देश में और देश के बाहर भी दलालों का है। दिल्ली, मुम्बई से लेकर सिंगापुर तक इस तरह की 'ऑक्सिटॉक्सिन पीड़ित बच्चियों' को मोटी रकम लेकर भेजा जाता है।

आदमी को समझ लिया जानवर

ऑक्सीटॉक्सिन एक सस्ता हार्मोन है। जिसके इंजेक्शन का इस्तेमाल अधिक कमाई के लालच में दूधवाले गाय और भैंसों से अधिक दूध पाने के लिए करते हैं। ऑक्सीटॉक्सिन की अनुशंसा पशु चिकित्सा विज्ञान भी नहीं करता है। बावजूद इसके, इसका इस्तेमाल धड़ल्ले से इसलिए हो पाता है क्योंकि यह बिना किसी पर्ची के सस्ती कीमत पर दवा की दुकानों पर उपलब्ध है। पहले जानवरों पर इसका गलत इस्तेमाल शुरू हुआ और अब इसका प्रयोग इंसानों पर हो रहा है। धीरे-धीरे हम जानवर और इंसान की खाई को पाटने में लगे हैं या खुद जानवर होते जा रहे हैं?

यौवन उभारने के लिए पशुओं की दवा

पुष्पांजलि क्रॉसले अस्पताल की वरिष्ठ गाइनोकॉलॉजिस्ट डॉ. ज्योति मिश्रा कहती हैं- 'ऑक्सिटॉक्सिन के इस्तेमाल से शरीर में विस्तार आता है। यह बात सच है। लेकिन इसका इस्तेमाल सामान्य परिस्थितयों में बेहद घातक साबित हो सकता है।' इस इंजेक्शन के तमाम खतरे को जानने के बावजूद इंसका इस्तेमाल खास मकसद से छोटी बच्चियों के ऊपर धड़ल्ले से हो रहा है। आज ऑक्सिटॉक्सिन के इस्तेमाल के लिए उत्तर प्रदेश और राजस्थान में मुफीद प्रयोगशालाएं बनी हैं अलवर, धौलपुर, आगरा, मेरठ और फिरोजपुर की जमीन।

अलवर है मुख्य प्रयोगशाला

अभी अधिक दिन नहीं हुए जब राजस्थान के अलवर के दो गांवों में दिल्ली पुलिस राजधानी से लापता हुई लड़कियों की तलाश में पहुंची और यह देखकर सन्न रह गई कि इस गांव में कम उम्र की गायब लड़कियों की बड़ी संख्या थी। चौंकाने वाली बात यह भी थी कि इन लड़कियों को वहां देखरेख के साथ पाला जा रहा था। कुछ-कुछ उसी तरह जैसे बकरे की बलि चढ़ने से पहले, उसे पाला जाता है। यहां पांच-छह साल की लड़कियों को लगातार ऑक्सीटॉक्सिन का इंजेक्शन दिया जा रहा था। इस वजह से इन सभी बच्चियों की काया अगले छह-सात महीनों में चौदह-पन्द्रह साल की किशोरियों की तरह हो जाती है बल्कि उनके स्वभाव में असामान्य यौन लालसा पैदा होती है। अलवर के जिस गांव में ये लड़कियां मिलीं, वहां किसी प्रकार का उद्योग नहीं था, न ही पशुपालन का चलन दिखाई पड़ता है लेकिन वहां की दवा की दुकानों में प्रतिबंधित ऑक्सीटॉक्सिन बेहद कम कीमत पर उपलब्ध था। उत्तर प्रदेश में वेश्या बस्तियों में रहने वाली महिलाओं के पुनर्वास के लिए लम्बे समय से काम कर रही मेरठ की अतुल शर्मा के अनुसार अलवर और मेरठ जैसे ठिकानों का इस्तेमाल छोटी उम्र की बच्चियों को लाकर उन्हें प्रशिक्षित करने के तौर पर किया जाता है। यहां इन्हें तैयार करने के ब देश के दूसरे हिस्सों में या फिर देश के बाहर की मंडियों में भेजा जाता है।

मां-बाप की भी होती है मिलीभगत

एक सेवानिवृत्त पुलिस अधिकारी के अनुसार कई बार यह सौदा मां-बाप की सहमति से भी होता है। एक बार बच्ची गायब हो गई। उसके दो साल के बाद मां-बाप अपहरण करने वाले का नाम लेकर यह कहते हुए थाने आए कि उनकी बच्ची का अमुक आदमी ने अपहरण किया है और उनके पास अपनी देरी का कोई पर्याप्त कारण न हो तो इसका क्या अर्थ निकलता है? मामला स्पष्ट है, जब तक उन्हें तयशुदा रकम मिलती रही, वे चुप रहे। जिस दिन पैसे आने बंद हुए, वे शिकायत लेकर हाजिर हो गए।

यदि परिवार वालों की सहमति से कुछ होने बात मान भी लें तो उसकी संख्या नगण्य है। इस सम्बंध में पुलिस जो भी तर्क दे लेकिन अपहरण और इस तरह के धंधे के फलने-फूलने के पीछे उसकी लापरवाही ही एक बड़ी वजह है। बात राजधानी की करें तो सिर्फ मार्च महीने में 153 लड़कियों के लापता होने का मामला दर्ज हुआ है। जब राष्ट्रीय राजधानी का आलम यह है फिर छोटे शहरों और गांवों में लड़कियों की सुरक्षा का तो ऊपरवाला ही मालिक है।

बलात्कार पीड़ितों को मिलेंगे दो से तीन लाख

पुनरुद्धारक न्याय की स्कीम दुष्कर्म पर गरम सियासत के बीच केंद्र सरकार का अहम फैसला, चरणबद्ध तरीके से मिलेगी राशि

पंकज कुमार पांडेय | माउंट आबू

यूपी में एक के बाद एक सामने आ रही बलात्कार की घटनाओं पर गरम हो चली सियासत और बलात्कार संबंधी बढ़ते आंकड़ों पर चिंता के बीच केंद्र ने बलात्कार पीड़ित महिलाओं के राहत व पुनर्वास की नई योजना एक अगस्त से लागू करने का फैसला किया है। इसके तहत बलात्कार पीड़ित महिलाओं को दो से तीन लाख रुपए तक की वित्तीय सहायता का प्रावधान है।

यह राशि चरणबद्ध तरीके से दी जाएगी। 'बलात्कार पीड़ितों हेतु वित्तीय सहायता एवं समर्थन सेवाएं - पुनरुद्धारक न्याय की स्कीम' नामक इस योजना को लागू करने की घोषणा महिला व बाल विकास मंत्री कृष्णा तीरथ की ओर से माउंट आबू में संपन्न संसदीय सलाहकार समिति की बैठक में की गई।

ऐसे मिलेगी मदद : बलात्कार पीड़ित महिलाएं व अवयस्क बालिकाओं को स्कीम के तहत सहायता का प्रावधान होगा। प्रभावित महिला को तत्काल राहत के तौर पर 20 हजार रूपए मिलेंगे। बाद में जरूरत के मुताबिक आश्रय, परामर्श, चिकित्सीय सहायता, कानूनी सहायता, शिक्षा व व्यावसायिक प्रशिक्षण जैसी सहायता सेवाओं के लिए 50 हजार रूपए दिए जाएंगे। पीड़ित की दीर्घकालिक जरूरतों की पूर्ति व उनमें आत्म विश्वास जगाने के लिए एक लाख 30 हजार रूपए अंतिम वित्तीय राशि सहायता के रुप में मिलेगी। पीड़ित महिला की मृत्यु हो जाने पर उसके कानूनी उत्तराधिकारी या अवयस्क बच्चों को एक लाख रूपए देने का प्रावधान है।

विशेष मामलों में ज्यादा राहत : दावों के निपटारे के लिए बने जिला बोर्डों की सलाह से राज्य बोर्ड अवयस्क बालिका,मानसिक रूप से विक्षिप्त,अक्षम महिलाओं या रेप की वजह से यौन रोगों व एचआईवी से संक्रमित होने वाली महिलाओं व गर्भवती हो जाने वाली महिलाओं के मामले में सहायता राशि तीन लाख रूपए तक दी जा सकती है।

बोर्ड करेंगे फैसला : स्कीम के तहत जिला,राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर आपराधिक क्षति से राहत एवं पुनर्वास बोर्डों बनाए जाएंगे। राष्ट्रीय व राज्य बोर्ड समन्वय और मानीटरिंग करेंगे,जबकि जिला बोर्ड स्कीम के अंतर्गत दावों पर निर्णय देंगे। राष्ट्रीय व राज्य बोर्ड स्वतः संज्ञान लेकर शिकायतों को जिला बोर्ड के पास भेज सकेंगे। विभिन्न सरकारी विभागों के प्रतिनिधि,चिकित्सा क्षेत्र से जुड़े विशेषज्ञ और सामाजिक विशेषज्ञों को बोर्ड में शामिल किया जाएगा। दावों के निपटारे के लिए विशेष फास्ट ट्रैक कोर्ट बनाने की भी योजना।

तुरंत कार्रवाई : रेप पीड़ित महिला को तुरंत राहत के लिए प्राथमिकी,चिकित्सा रिपोर्ट और आरंभिक जांच रिपोर्ट 72 घंटे के भीतर जिला बोर्ड को भेजनी होगी।

पुलिस से दस्तावेज नहीं मिलने पर बोर्ड संबंधित अधिकारियों से पूरी जानकारी तलब कर सकता है। अंतरिम राहत और सहायता सेवा 15 दिन से तीन सप्ताह के बीच देनी होगी। दंडिक मामले में पीड़ित का बयान दर्ज किए जाने की तारीख से एक साल के भीतर एक लाख 30 हजार रूपए की अंतिम सहायता राशि दी जाएगी। दुरुपयोग के मामले में बोर्ड दावों को अस्वीकार कर सकेगा।

शर्मसार राज्य

रेप के सबसे ज्यादा मामले म.प्र (13.7 फीसदी) से हैं। इसके बाद पश्चिम बंगाल, यूपी, महाराष्ट्र, असम, राजस्थान, बिहार के मामले आते हैं। महिला व बाल विकास मंत्रालय ने अपनी संसदीय समिति में यह आंकड़े राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के 2008 की रिपोर्ट के हवाले से रखे।

पूरे देश में बलात्कार की जघन्य घटनाएं हो रही हैं। हमें हर हाल में ऐसे घृणित अपराध को रोकने की जरूरत है। इसी दिशा में केंद्र का यह छोटा प्रयास है।"

कृष्णा तीरथ
महिला व बाल विकास मंत्री, स्वतंत्र प्रभार

ताकि उनके घाव भरें

अलका आर्य

बीच बहस में

बलात्कार पीड़ित महिलाओं को वित्तीय मदद देने की जरूरत काफी समय से महसूस की जा रही है। हाल ही में योजना आयोग ने इस बारे में सरकार को एक प्रस्ताव सुझाया है, जो स्वागतयोग्य है। योजना आयोग का कहना है कि ऐसी सहायता इनसाफ की बहाली सुनिश्चित करने की दिशा में किए जाने वाले प्रयासों का एक हिस्सा भर है।

आयोग ने केंद्रीय महिला एवं बाल मंत्रालय को लिखे एक पत्र में यह नोट भी नत्थी किया है कि अपराधियों को सजा दिलाए जाने के साथ-साथ पीड़ित महिला की गरिमा एवं आत्मविश्वास को बहाल किया जाना भी बेहद जरूरी है। यह उपचारात्मक न्याय का वह सिद्धांत है, जिसके तहत पीड़ित महिला को उस पर होने वाले अत्याचार के सदमे से निजात दिलाने की कोशिश की जाती है। इसलिए मुआवजे के रूप में वित्तीय सहायता और अन्य समर्थक सेवाओं की जरूरत होती है। इस प्रस्ताव के अनुसार, बलात्कार की हर पीड़ित महिला को दो लाख रुपये की सहायता किस्तों में दी जानी चाहिए। अगर वह नाबालिग या मानसिक रूप से विकलांग या बलात्कार के परिणामस्वरूप गर्भवती या एड्स पीड़ित हो जाए, तो उस हालत में सहायता राशि बढ़ाकर तीन लाख रुपये की जानी चाहिए।

दरअसल ऐसी पुनर्वास योजना की जरूरत लंबे समय से इसलिए महसूस की जाती रही है, क्योंकि बलात्कार पीड़ित महिला पर इस हादसे का गहरा मानसिक असर पड़ता है। यह चोट महज शारीरिक ही नहीं होती, बल्कि उसके पूरे व्यक्तित्व पर दूरगामी प्रभाव छोड़ती है। पीड़िता का खुद पर से भरोसा कम हो जाता है और उसे बराबर लगता रहता है कि उसकी गरिमा का अपमान किया गया है। जाहिर तौर पर इसकी क्षतिपूर्ति रकम से नहीं हो सकती, लेकिन चूंकि ऐसी घटनाओं की ज्यादातर शिकार गरीब महिलाएं होती हैं, जिनके पास अपने इलाज के लिए पैसा नहीं होता, उनके लिए वित्तीय सहायता बहुत जरूरी है। इस वित्तीय मदद से वह अपना शारीरिक व मानसिक इलाज करा सकेंगी तथा उन्हें किसी से आर्थिक मदद लेने के लिए निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। सामाजिक लांछन एवं गरीबी के चलते ऐसी महिलाओं के इलाज को नजर अंदाज करने वाली सामाजिक प्रवृत्ति से हम आज तक उबर नहीं पाए हैं।

योजना आयोग के पुनर्वास वाले इस प्रस्ताव का आधार राष्ट्रीय महिला आयोग की 'बलात्कार पीड़ित महिलाओं के लिए राहत एवं पुनर्वास योजना 2005' है। राष्ट्रीय महिला आयोग और महिला व बाल विकास मंत्रालय ने महिला संगठनों व वकीलों से परामर्श करने के बाद इसे अंतिम रूप दिया था और अब योजना आयोग भी उन सिफारिशों से लगभग सहमत है।

वित्तीय सहायता का मूल्यांकन केवल पीड़ित महिला के इलाज तक ही सीमित नहीं किया जा सकता, बल्कि यह उसके सशक्तिकरण में भी अहम भूमिका निभा सकती है। कई मामलों में पीड़ित महिलाओं को सामाजिक बहिष्कार तक झेलना पड़ता है। ऐसे में राज्य के खजाने से मिले वित्तीय मदद से वह बेहतर तरीके से जीवनयापन करके सशक्त हो सकती है।

अगर राज्य सरकारें आयोग के सुझावों को मान लेती हैं, तो इसका खयाल रखना भी जरूरी होगा कि पीड़िता को बिना कोई रिश्वत दिए समय सीमा के भीतर पूरी रकम मिल जाए। उस रकम का सही इस्तेमाल हो, इस पर भी निगाह रखने की जरूरत होगी। पुनर्वास योजना का मकसद सिर्फ पीड़िता को धन दिलाना ही नहीं, बल्कि उसे वास्तविक रूप में सशक्त करना, उसकी गरिमा व आत्मविश्वास को बहाल करना है। उसके हाथ में आई रकम पर कहीं उसके पुरुष रिश्तेदार अपना हक न जमा लें, इस बारे में भी सचेत होना लाजिमी है। वित्तीय सहायता से बहुत हद तक उस अदालती प्रवृत्ति पर रोक लग सकती है, जिसमें दोषी पीड़ित महिलाओं को मुआवजा देकर अपनी सजा कम करा लेते हैं। विधिसम्मत न्याय के साथ सामाजिक सशक्तिकरण वाले ऐसे सुझावों का अपना महत्व है, पर क्या सरकार को बलात्कार के सभी मामले फास्ट ट्रैक अदालत में निपटाने की व्यवस्था नहीं करानी चाहिए? बलात्कार पीड़ित महिलाओं के पुनर्वास की व्यवस्था करना जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी आरोपी को बिना देरी किए कड़ी सजा दिलाना भी है।

न्याय नहीं सिर्फ मुआवजा

अलका आर्य

लेखिका स्वतंत्र पत्रकार हैं।

क्या मुआवजा दिलाकर सामूहिक बलात्कार जैसे संगीन अपराध में दोषियों को जमानत मिलनी चाहिए या उनकी सजा कम कर दी जानी चाहिए, सरीखे सवालों पर सोचने का वक्त किसके पास है। ये सवाल सर्वोच्च अदालत के फैसलों से निकले हैं। इन फैसलों में सामंतवादी मानसिकता ही जाहिर होती है। लेकिन ऐसे सवालों को जन्म देने वाले फैसलों के खिलाफ दिल्ली, मुंबई, हैदराबाद, बंगलरू जैसे महानगरों में न तो आम आदमी व न ही सिविल सोसाइटी के नुमाइंदों ने अपना सार्वजनिक रोष दर्ज कराया। बलात्कार की पीड़िता की आर्थिक मदद करना राज्य का दायित्व है, न कि अपराधी से मुआवजा दिलाकर बदले में अपराधी को राहत पहुंचाना।

देश की सर्वोच्च अदालत ने नए सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए गैंगरेप के एक मामले में गरीब पीड़िता को मुआवजा देने की शर्त पर दोषियों को जमानत पर रिहा करने का आदेश दे दिया तो दूसरे मामले में दोषियों की सजा कम कर दी, क्योंकि उन्होंने भी गरीब पीड़िता के साथ समझौता कर लिया था।

पहले मामले में आठ वर्ष पूर्व हरियाणा के रोहतक जिले के इस्माइल गांव में संजय और रामफल ने एक महिला के साथ सामूहिक बलात्कार किया और सेशन अदालत ने दोनों आरोपियों को 12-12 वर्ष की सजा दी, जिसे उच्च अदालत ने भी बरकरार रखा। दोषियों ने इस सजा के खिलाफ सर्वोच्च अदालत में अपील की और अदालत ने स्पष्ट कर दिया कि सिर्फ सजा कम करने पर सुनवाई हो सकती है। पर इसके साथ ही उनके जेल से बाहर आने का रास्ता भी खोल दिया।

दोनों अपराधी छह साल से जेल में हैं। शीर्ष अदालत ने कहा है कि दोनों मुआवजे के बदले जमानत पर जेल स बाहर जा सकत ह। जास्टस मार्कडय काटजू और जस्टिस ज्ञानसुधा मिश्रा की खंडपीठ ने मजिस्ट्रेट को निर्देश दिए कि जब दोनों दोषी पीड़िता को मुआवजे की डेढ़-डेढ़ लाख रुपए, यानी कुल तीन लाख रुपए दे दें तो उन्हें जमानत पर छोड़ दें। खंडपीठ ने कहा कि इसमें कोई शक नहीं कि किसी महिला की इज्जत कुछ लाख रुपए नहीं हो सकती, क्योंकि पीड़ित महिला गरीब है, लिहाजा मुआवजा देने की शर्त पर दोषियों को जमानत दी जाती है। गरीब पीड़िता ने अदालत के इस फैसले पर हामी भर दी थी।

गौरतलब है कि इस तरह का यह पहला मामला है, जिसमें मुआवजा देकर सामूहिक बलात्कार जैसे संगीन अपराध में दोषियों को जमानत दी गई है। दूसरे मामले में सर्वोच्च अदालत की इसी खंडपीठ ने पंजाब की 14 साल पुरानी सामूहिक बलात्कार की वारदात के तीन दोषियों की दस साल की सख्त सजा को घटाकर साढ़े तीन साल कर दिया, दोषी सजा की यह अवधि जेल में काट चुके हैं। अदालत ने इस मामले में दोषियों की सजा कम करने के पीछे दलील दी कि यह मामला बहुत पुराना है और दूसरे अपराधी व पीड़िता ने राजीनामा कर लिया है कि वे अब शांत जिंदगी जीना चाहते हैं। तीनों दोषी गरीब पीड़िता को कुल एक लाख पचास हजार रुपए (यानी प्रति दोषी पचास हजार) बतौर जुर्माना दे दें और जेल से छूट सकते हैं। इन फैसलों से समाज में एक गलत संदेश यह गया है कि लड़की के साथ बलात्कार करो और पैसे देकर जमानत पर छूट कर जेल से बाहर आ जाओ या सजा कम करा लो।

गौरतलब है कि राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्षा डॉ. गिरिजा व्यास ने हाल में कहा है कि बलात्कार के मामलों में मुआवजा स्वीकार्य नहीं है। हम इससे सहमत नहीं हैं कि कोई भी अमीर व्यक्ति ऐसे अपराध करने के बाद पैसा दे सकता है व सजा से मुक्ति पा सकता है। बलात्कार करने वाले संगीन अपराधी इसे एक औजार के तौर पर इस्तेमाल कर सकते हैं। यह आशंका बराबर बनी रहेगी, इसके दूरगामी नतीजे होंगे।

सवाल यह भी है कि क्या बलात्कार सरीखे संगीन अपराध के दोषियों से मुआवजा लेकर या समझौतों के आधार पर दोषियों को छोड़ा जाना नकारात्मक कदम नहीं है। यह तथ्य भी ध्यान में रखना होगा कि ऐसे जुर्म की शिकार ज्यादातर गरीब लड़कियां/महिलाएं ही होती हैं। क्या ऐसे आदेश गरीबी व न्याय का उपहास नहीं उड़ा रहे?

अहम मुद्दा यह है कि क्या दोषी के प्रति नरमी वो भी बलात्कार जैसे संगीन अपराध के संदर्भ में अदालत की तरफ से दिखाई जानी चाहिए। वो भी इसलिए, क्योंकि दोषी अमीर है और वह पीड़िता को पैसा दे सकता है या न्यायिक प्रक्रिया में देरी होने की वजह को इसका आधार बनाया जाए। पीड़िता अदालत में केवल आरोपी को सजा दिलाने के लिए ही संघर्ष नहीं करती, बल्कि उसके साथ-साथ अदालत से अपने लिए भी न्याय की उम्मीद करती है।

राष्ट्रीय महिला आयोग भी पीड़िताओं के साथ खड़ा है और लिहाजा सर्वोच्च अदालत ने पंजाब वाले मामले पर जो फैसला सुनाया है, उसे लेकर आयोग ने अदालत में पुनर्विचार याचिका दायर की है।

alkaarya2001@gmail.com

बलात्कार मामलों में बंध्याकरण जैसी सजा का हो प्रावधान: अदालत

जनसत्ता संवाददाता

नई दिल्ली, 30 अप्रैल। देश में बलात्कार और यौन उत्पीड़न की बढ़ती घटनाओं पर चिंता जताते हुए दिल्ली की एक अदालत ने शनिवार को कहा कि सांसदों को इस तरह के मामलों में शल्य चिकित्सा या रसायनों के जरिए बंध्याकरण जैसी वैकल्पिक सजा की संभावना तलाशनी चाहिए।

अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश कामिनी लाउ ने एक युवक को अपनी नाबालिग सौतेली बेटी से बलात्कार के मामले में 10 साल के कारावास की सजा सुनाते हुए कहा कि बलात्कार के अपराध के लिए वैकल्पिक सजा का प्रावधान होना चाहिए। यह समय की मांग बन गई है। उन्होंने कहा कि यह ऐसा अपराध है जिससे अलग तरीके से निपटे जाने की जरूरत है। बलात्कार और छेड़खानी के अपराध के लिए बंध्याकरण (शल्य चिकित्सा या रसायन के जरिए) जैसी वैकल्पिक सजा के संबंध में पूरी सार्वजनिक चर्चा होनी चाहिए। अदालत ने कहा कि सांसदों को इस मुद्दे को गंभीरता से लेना चाहिए। इस तरह का कानून अमेरिका, ब्रिटेन और जर्मनी जैसे कई विकसित देशों में है।

उन्होंने कहा- विडंबना है कि सांसदों ने इस खतरनाक स्थिति का अब तक संज्ञान नहीं लिया है। नाबालिग से बलात्कार, एक के बाद एक ऐसे अपराधों को अंजाम दे रहे लोगों या प्रोबेशन के लिए शर्त व सजा में कमी या मामूली अपराध के लिए आरोपित किए जाने के बदले में अदालत के सामने अपना जुर्म कबूल करने के मामले में वैकल्पिक सजा के तौर पर शल्य चिकित्सा या रसायनों के इस्तेमाल के जरिए बंध्याकरण की अनुमति देने की संभावना को तलाशकर पूरी गंभीरता से इस मुद्दे का निराकरण करना चाहिए। अदालत ने कहा- हमारा मानना है कि समय आ गया है, जब हम एक समाज के तौर पर खड़े हों और विकसित देशों में मौजूद कानून जैसे कानून पर विचार करें, जिसमें शल्य चिकित्सा या रसायनों के जरिए बंध्याकरण का प्रावधान है।

रासायनिक बंध्याकरण के तहत दवाओं के जरिए बलात्कारियों और अन्य यौन अपराधियों की कामेच्छा और यौन सक्रियता को घटाने की कोशिश की जाती है ताकि वे अपने अपराधों की पुनरावृत्ति न करें। शल्य चिकित्सा के जरिए किए जाने वाले बंध्याकरण के तहत शरीर से आपरेशन के जरिए वृषण या अंडाशय को हटा दिया जाता है।

जरूरी बने आंकड़े

भारत में हर 29 मिनट में एक बलात्कार होता है	प्रति वर्ष औसतन 1693 बलात्कार के मामले सामने आते हैं	मगर 69 में से एक मामले में ही रिपोर्ट दर्ज होती है

स्रोत: एनसीआरबी — सिर्फ दिल्ली में ही हर साल औसतन 562 रेप केस

खास खबर

सत्र न्यायाधीश कामिनी लॉ ने बलात्कारी बाप को सजा देते हुए की बधियाकरण की पैरवी

क्यों न घटा दिया जाए बलात्कारियों का पुरुषत्व

संदीप कुमार नई दिल्ली

बलात्कारियों के खिलाफ कठोर सजा की बात कहते हुए दिल्ली की एक सत्र अदालत ने बलात्कारियों का शल्य चिकित्सा या रासायनिक प्रक्रिया से बधियाकरण (नपुंसक बनाने) की पैरवी की है। एडिशनल सेशन जज कामिनी लॉ ने बधियाकरण को समय की जरूरत बताया है। उनके मुताबिक, काननू बनाने वालों को इस पर विचार करना चाहिए। एक 15 वर्षीय बच्ची से बलात्कार करने वाले उसके सौतले पिता को सजा सुनाते हुए अदालत ने ये बात कही।

अदालत ने भलस्वा डेयरी निवासी दिनेश यादव को अपनी 15 वर्षीय बेटी से दुष्कर्म का दोषी ठहराते हुए 10 साल कैद व 25 हजार रुपए जुर्माने की सजा सुनाई। इस मामले में पीड़िता की मां को भी पुलिस ने सह आरोपी बनाया था। एएसजे ने कहा, लड़कियां अपने परिवारों में भी सुरक्षित नहीं, जहां पिता और भाई ही उनकी इज्जत के दुश्मन बन चुके हैं।

अदालत का कहना था कि देश के कानून बनाने वाले विद्वानों को अभी भी यह बात संज्ञान में लेना बाकी है कि बलात्कार की वैकल्पिक सजा के तौर पर सर्जिकल या रासायनिक बधियाकरण जैसी सजा दी जाए। विशेष रूप से मासूम बच्चियों, नाबालिग के दुष्कर्मियों को ऐसी सजा देने के बारे में गंभीरता से विचार होना चाहिए। मेरे विचार में यह समय है कि हम एक सभ्य समाज के रूप में खड़े हों और विकसित देशों के कानून के समान ही अपने यहां भी ऐसा कानून बनाने के बारे में सोचें।

बधियाकरण की सजा पर पूर्ण तर्क और जनता के बीच बहस होनी चाहिए। अदालत ने विधि एवं न्याय मंत्रालय के सचिव के अलावा राष्ट्रीय महिला आयोग और दिल्ली महिला आयोग की अध्यक्ष को भी इस फैसले की प्रति भेजी है।

कई देशों में है सख्त सजा का प्रावधान

- अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी जैसे विकसित देशों ने विकल्प के साथ दुष्कर्मी और छेड़छाड़ करने वाले का (विशेषकर बच्चों से) रासायनिक बधियाकरण करने का प्रयोग किया है।
- अमेरिका में कुछ जगह स्वेच्छा से कैमिकल कैस्ट्रेशन के लिए राजी होने वाले यौन अपराधियों को कम सजा का भी प्रावधान है।
- कैलिफोर्निया अमेरिका का पहला राज्य था, जिसने यौनाचार करने वालों को रासायनिक बधियाकरण से दंडित करने के लिए दंड संहिता बदली।
- 25 जून, 2008 को लुइसियाना के भारतीय मूल के गवर्नर बॉबी जिंदल ने सीनेट बिल 144 पर हस्ताक्षर करते हुए जजों को दुष्कर्मियों का कैमिकल कैस्ट्रेशन की सजा देने की अनुमति दी।
- जर्मनी और इजराइल ने भी बाल यौन उत्पीड़कों को यही सजा देने का प्रावधान तय किया।

सजा का यह कोई विकल्प नहीं

अलका आर्य

लेखिका स्वतंत्र पत्रकार हैं।

बलात्कारियों को सजा के तौर पर बधियाकरण (नपुंसक बनाने) की पैरवी इस बार किसी तालिबान सरीखे संगठन की ओर से नहीं, बल्कि न्याय के मंदिर से सुनाई दी है। दिल्ली की रोहिणी स्थित सत्र अदालत की एडिशनल सेशन जज कामिनी लॉ ने 15 साल की नाबालिग बेटी से दुष्कर्म करने वाले उसके सौतेले पिता दिनेश यादव को दोषी ठहराते हुए 10 साल कैद व 25 हजार रुपए जुर्माने की सजा सुनाने के साथ-साथ यह कह कर बहस छेड़ दी है कि बलात्कारी को बलात्कार की वैकल्पिक सजा के तौर पर सर्जिकल या रासायनिक बधियाकरण जैसी सजा दी जाए।

जज कामिनी लॉ ने अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी जैसे विकसित मुल्कों का जिक्र किया, जिन्होंने दुष्कर्मी और छेड़छाड़ करने वाले का (विशेषकर बच्चों से) रासायनिक बधियाकरण करने का प्रयोग किया है। अमेरिका में कुछ जगह स्वेच्छा से रासायनिक बधियाकरण के लिए राजी होने वाले यौन अपराधियों को कम सजा देने का भी प्रावधान है। अब इस बहस ने हमारे सामने कई सवाल खड़े कर दिए हैं। बलात्कारियों को जेल में भेजने की बजाए पुरुषत्व घटाने की सजा क्या वाकई ऐसा विकल्प है,जो हमें सभ्य समाज की श्रेणी में खड़ा करता है।

क्या दावे के साथ कहा जा सकता है कि ऐसा कानून बनने से बाल यौन उत्पीड़न के मामलों में कमी आएगी। इस बहस का अगला सवाल यह हो सकता है कि अगर यह सजा भी समाज में अपराधियों के भीतर अपेक्षित खौफ न पैदा कर पाया तो फिर क्या बलात्कारी के लिए फांसी की सजा वाला कानून बनाने की मांग अदालत की ओर से सुनाई पड़ सकती है।

बाल यौन उत्पीड़न एक गंभीर समस्या है और ज्यादातर मामलों में नजदीकी रिश्तेदार व परिचितों के नाम सामने आते हैं। मुंबई के टाटा समाज विज्ञान संस्थान ने एक सर्वेक्षण के तहत 150 नाबालिग लड़कियों से इस मुद्दे पर बातचीत की। इनमें 58 ऐसी लड़कियां थीं, जो दस साल की उम्र पार करने से पहले ही अपने परिवार के किसी सदस्य या पारिवारिक मित्र की हवस का शिकार हो गई थीं। अधिकांश लड़कियां पारंपरिक सोच के चलते इसे अपनी व परिवार की बदनामी से जोड़कर देखती हैं और चुप्पी तोड़ने का साहस कम ही दिखा पाती हैं।

कई संस्थाओं ने इस चुप्पी को तोड़ने में पहल की है और दस्तावेजीकरण मनोचिकित्सकों व अदालतों के लिए मददगार साबित हुए हैं। पर सवाल यह है कि सजा के लिए बधियाकरण जैसे मध्ययुगीन तरीके को अपनाने से पहले हम मौजूदा सजा को ज्यादा कड़ाई से लागू करने पर और अन्य तरीके खोजने पर विचार क्यों नहीं करते। अपने देश में औसतन हरेक तीस मिनट में एक बलात्कार होता है और बलात्कार के तकरीबन 60,000 मामलों की सुनवाई होनी है। औसतन बलात्कार का एक मामला 12 साल में जाकर निपटता है व सजा की दर बहुत कम है। बलात्कार के मामलों की जल्द सुनवाई व निपटारे के लिए त्वरित अदालतें भी गठित की गई हैं।

बीती 24 नवबंर को हुए धौलाकुआं सामूहिक बलात्कार कांड के बाद राजधानी दिल्ली में महिलाओं की सुरक्षा संबंधी सवालों का हल तलाशने के लिए बुलाई गई उच्च स्तरीय बैठक में यह मुद्दा उठा था कि बलात्कारी पकड़े तो जाते हैं, पर उन्हें सजा मिलने में बहुत देरी हो जाती है। राजस्थान में विदेशी महिलाओं व बच्चियों के साथ हुए बलात्कार के कुछेक मामलों की सुनवाई त्वरित अदालतों में हुई है। 23 सितंबर 2006 को ओडीशा की एक स्थानीय अदालत ने एक नाबालिग बच्ची के साथ हुए बलात्कार के मुकदमे का केवल 20 दिन में ही निपटारा करते हुए आरोपी को दस साल की सजा सुनाई थी।

बलात्कार के त्वरित निपटारे से अपराधियों व ऐसी प्रवृत्ति वाले लोगों के मन में जल्दी कड़ी सजा पाने का डर तो रहता है। महिला संगठनों की राय में फोकस बच्चियों/महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने वाले संस्थागत व सरकारी ढांचे को मजबूत करने, बलात्कार की गहन जांच व कानून को सख्ती से अमल करने पर होना चाहिए। बधियाकरण या फांसी की सजा इसका हल नहीं है।

गौरतलब है कि कुछ साल पहले बलात्कारी को फांसी की सजा दिए जाने पर भी बहस छिड़ी थी और तत्कालीन गृह मंत्री लालकृष्ण आडवाणी ने भी फांसी की सजा की वकालत की थी। राष्ट्रीय महिला आयोग ने इस मुद्दे पर राज्य महिला आयोगों की राय भी जानी थी और अधिकांश ने ऐसी सजा का विरोध किया था। दलील दी थी कि ऐसी सजा बलात्कार जैसे जघन्य अपराध को कम करने की कोई शर्तिया इलाज नहीं है और ऐसा होने पर अपराधी द्वारा अपराध करने के बाद पीड़िता की हत्या करने की आशंका बराबर बनी रहेगी। फांसी की सजा मिलने से अपराधी की पत्नी और बच्चों की तकलीफें ही सबसे ज्यादा बढ़ेंगी। संसद में प्रस्तुत 'लड़कियों और महिलाओं के साथ बलात्कार निवारण विधेयक,2003' में भी रिश्तेदारों और परिचितों द्वारा बलात्कार या बलात्संग करने पर उसे बधियाकरण से दंडित करने का प्रावधान रखा गया था। अब दिल्ली की एक सत्र अदालत ने ऐसा सुझाव दिया है। ऐसे सुझाव जब अदालत से जनता के बीच बहस के लिए आते हैं तो उसके अपने खतरे होते हैं।

alkaarya2001@gmail.com

महिला श्रम के लिए बेहतर विकल्प क्यों नहीं?

अमृता ठाकुर
लेखिका पत्रकार हैं।

यह ऐसा अकेला क्षेत्र नहीं है, जहां महिलाओं के लिए कार्यस्थितियां खराब हैं, बल्कि महिलाओं को श्रम के अन्य विकल्पों जैसे घरेलू काम, खेती मजदूरी या छोटे-मोटे कामों में भी बदतर हालात का सामना करना पड़ता है।

देह व्यापार को कानूनी जामा पहनाने का मुद्दा पिछले एक दशक से लगातार बहस का मुद्दा बना हुआ है। इसकी मांग के पीछे विभिन्न संगठनों व बुद्धिजीवियों का तर्क है कि इससे इन महिलाओं की कार्यस्थिति में सुधार आएगा और उन्हें वो सभी अधिकार मिलेंगे, जो एक वर्कर को मिलते हैं। लेकिन इसका एक पहलू यह भी है कि देह व्यापार को श्रम मान लेना, यानी उसे पूरी तरह से बाजार के हवाले कर देना कहां तक उचित है।

वैसे भी भारत में मौजूद सामाजिक-आर्थिक स्थितियां इस बाजार को अपनी गति से चलने के लिए प्रेरित कर रही हैं। ऐसे में सरकार के लिए जरूरी है कि वह देह व्यापार को कानूनी दर्जा दिए जाने के मुद्दे पर जल्द किसी फैसले पर पहुंचे और मामले को साफ करे।

पैन इंडिया के एक अध्ययन में शामिल देह व्यापार करने वाली महिलाओं में से लगभग इकहत्तर प्रतिशत ने बताया कि वे इस क्षेत्र में अपनी इच्छा से आई हैं। हालांकि वे इसे कोई इज्जतपूर्ण पेशा नहीं मानतीं लेकिन रोजी-रोटी के लिए दूसरे कार्यों की अपेक्षा देह व्यापार को बेहतर भुगतान करने वाला कार्य मानती हैं। यह ऐसा अकेला क्षेत्र नहीं है, जहां महिलाओं के लिए कार्यस्थितियां खराब है, बल्कि महिलाओं को श्रम के अन्य विकल्पों जैसे घरेलू काम, खेती मजदूरी या अन्य कामों में भी बदतर हालात का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में यह तर्क कि देह व्यापार का क्षेत्र महिलाओं के शोषण व उत्पीड़न का क्षेत्र है, गले नहीं उतरता। सेंटर फॉर एडवोकेसी ऑन स्टीगमा एंड मार्जिनलाइजेशन (कासम) के तत्वाधान में किए गए इस अध्ययन को पोलो लोंअगो रिसर्च इनीशिएटिव ने अपना समर्थन दिया है व कई जानी-मानी गैरसरकारी संगठनों ने इसमें अपना सहयोग दिया। इस अध्ययन में चौदह राज्यों व केंद्रशासित प्रदेशों की 3000 वेश्यावृत्ति करने वाली महिलाओं को शामिल किया गया। इस अध्ययन में एक खास बात और उभर कर सामने आई है कि वेश्यावृत्ति आय के अन्य विकल्पों के साथ अतिरिक्त आय के लिए भी किया जा रहा है। कुछ रिपोर्टों में यह बात सामने आई है कि समाज में ऐसा वर्ग उभर कर सामने आ रहा है, जिसमें लड़कियां मजबूरीवश नहीं, बल्कि अपनी अतिरिक्त जरूरतों को पूरा करने के लिए देह व्यापार को विकल्प के रूप में अपना रही हैं। इन दोनों मामलों में बस इतना ही अंतर है कि निम्नवर्ग की महिलाओं को श्रम के बाजार में दूसरा ऐसा कोई विकल्प नहीं दिख रहा, जो उनके श्रम का उचित भुगतान कर सके व जिससे उनका व उनके परिवार का पेट पल सके। दोनों ही स्थिति में बाजार उन्हें मौका दे रहा है। तब ऐसे में इस क्षेत्र को क्यों कानूनी स्वीकृति प्रदान कर दी जाए?

क्या हम इन महिलाओं को कार्य का बेहतर विकल्प नहीं दिलवा सकते या मौजूदा क्षेत्रों की कार्यस्थिति को उनके लिए बेहतर नहीं बना सकते। बाजार का तंत्र 'मांग व पूर्ति' पर खड़ा होता है। इसके लिए उकसाती मांगों को समाप्त करने की दिशा में कुछ काम क्यों नहीं किया जा रहा है?

पर इन मुद्दों पर अजीब सी खामोशी छाई हुई है। अभी हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने सभी राज्यों के सचिवों को फटकार लगाई कि अदालत के निर्देश के बावजूद उन्होंने वेश्यावृत्ति करने वाली महिलाओं के पुनर्वास के संबंध में न कोई योजना बनाई और न ही इस दिशा में कोई काम किया। अदालत ने एक अन्य फैसले में सरकार को इन महिलाओं को कार्य के दूसरे विकल्प उपलब्ध कराने के लिए व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था का निर्देश दिया था, पर हुआ कुछ नहीं। यही स्थिति उन समितियों की भी है जिसे, ग्राहकों को भी सजा के दायरे में लाने व वेश्यावृत्ति को कानूनी जामा पहनाने के मुद्दे पर विचार करने के लिए गठित किया गया था। वो समिति क्या कर रही है, है भी या नहीं है? उसकी कुछ खोज खबर नहीं है। सब कुछ ठप पड़ा है।

दरअसल, देह व्यापार की बात तभी चिंता का विषय बन पाती है, जब अंतरराष्ट्रीय संगठन एड्स के खतरे की बात करते हैं। इनमें मजबूरी में शामिल महिलाओं और बच्चियों को इससे क्या नुकसान हो रहा है, नीति निर्धारक इस संदर्भ में उदासीन ही रहते हैं।

amritathakur30@gmail.com

घरेलू कामगारों की सुध लेने वाला कदम

प्रदीप कुमार
लेखक पत्रकार हैं।

केंद्र सरकार ने हाल ही में जिनेवा में आयोजित अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के बैनर तले ऐसे कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किए हैं, जिससे उसे आने वाले दिनों में देश के अंदर काम कर रहे घरेलू मजदूरों को ढेर सारी सुविधाएं मुहैया करानी होंगी।

पिछले दिनों एक फिल्म आई थी, *अतिथि तुम कब जाओगे*। अपने बुर्जुगों के प्रति सम्मान बरतने के सामाजिक भाव वाली इस फिल्म का एक दृश्य है। जब अभिनेत्री कोंकणा सेन पति अजय देवगन से कहती हैं- यहां दूसरा पति तो आसानी से मिल सकता है, लेकिन दूसरी कामवाली को ढूंढना काफी मुश्किल है। यह संवाद कोई हवा में नहीं गढ़ा गया, बल्कि यह महानगरीय समाज का कटु सच है। महानगरीय जीवन के उच्चवर्गीय और उच्च मध्यवर्गीय परिवारों के जीवन की कल्पना बिना कामवालियों के बेहद मुश्किल है।

ऐसे घर परिवार की महिलाओं से बात करें तो हर घर में कामवालियों की शिकायतों का पिटारा सुनने को मिल सकता है। मसलन, कामवाली बर्तन में जूठन छोड़ देती है, बिना बताए नागा कर देती है, झाड़ू पोछा ठीक से नहीं करती है, घर में अतिथियों के आने पर गुस्सा जताती है। काम खत्म किए बिना दूसरे घर पहुंचने की जल्दी में रहती है। इनमें ज्यादातर शिकायतें सही होती हैं, लेकिन इस तस्वीर का एक दूसरा पहलू भी है। ज्यादातर लोगों की उम्मीद रहती है कि कामवालियां नागा न करें, कामवालियां बीमार न पड़ें और कम से कम मजदूरी में हर काम एकदम परफैक्शन के साथ करें। अगर आप महानगरों में रहने वाले परिवारों का हिस्सा हैं तो इन हालात से आपका रोज पाला पड़ता होगा। दरअसल जिन कामवालियों या घरेलू श्रमिकों के बिना हमारा जीवन घिसटता हुआ प्रतीत होने लगता है, उनके लिए अब तक कोई सरकारी सुविधा मौजूद नहीं है।

लेकिन इस दिशा में अब सरकार ने पहली बार सकारात्मक कदम उठाने के संकेत दिए हैं। केंद्र सरकार ने हाल ही में जिनेवा में आयोजित अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के बैनर तले ऐसे कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किए हैं, जिससे उसे आने वाले दिनों में देश के अंदर काम कर रहे घरेलू मजदूरों को ढेर सारी सुविधाएं मुहैया करानी होंगी। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की ओर से कहा गया है कि घरेलू कामगारों को न तो नौकर समझना चाहिए और न ही वह परिवार का सदस्य हो सकता है, उसकी हैसियत एक कर्मचारी की होनी चाहिए और इस नाते उसे कुछ सुविधाएं भी मिलनी चाहिए। इसमें मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी, काम के घंटों का निर्धारण, सप्ताह में एक दिन अवकाश का निर्धारण, ओवरटाइम काम करने पर अलग से भुगतान की व्यवस्था, कामकाज की सुविधा, सामाजिक सुरक्षा के अलावा मातृत्व के दौरान अवकाश की सुविधाएं मुहैया करानी होंगी। इसे दुनिया भर के देशों में तत्काल प्रभाव से लागू कराने पर जोर दिया जा रहा है। हालांकि इस दिशा में भारत सरकार की तत्परता दिखाए जाने के बाद भी कम से कम डेढ़ साल के बाद ही इन प्रावधानों को लागू कराया जा सकेगा। हालांकि इन प्रावधानों को जमीनी स्तर पर लागू करने में काफी दिक्कतों का सामना करना होगा। इसका उदाहरण महाराष्ट्र में पहले ही दिख चुका है, जहां की राज्य सरकार ने घरेलू कामगारों की सुरक्षा के लिए 2008 में एक कानून बनाया था। लेकिन तीन साल बीतने के बाद यह कानून महज कागजों में सिमटा हुआ है। राज्य सरकार इस कानून को लागू कराने के लिए अब तक एक बोर्ड भी नहीं बना सकी है। राज्य के श्रम विभाग का कहना है कि फंड के अभाव में वो इस दिशा में कुछ खास नहीं कर सकी है।

बहरहाल, केंद्र सरकार ने इस दिशा में शुरुआत करते हुए देश भर के कामगार मजदूरों को स्वास्थ्य बीमा की सुविधा देने का फैसला लिया है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के तहत सरकार प्रत्येक घरेलू कामगारों को 30 हजार रुपए का बीमा देगी। प्रीमियम का तीन-चौथाई हिस्सा केंद्र सरकार जमा करेगी, जबकि एक-चौथाई हिस्सा राज्य सरकारों को देना होगा। महाराष्ट्र सरकार के उदाहरण को देखते हुए बड़ा सवाल यह है क्या राज्य सरकारें अपना हिस्सा जमा कर पाएंगी। इसके अलावा सभी राज्यों में एक बोर्ड का गठन भी करना होगा, जहां घरेलू कामगार अपना पंजीयन कराएंगे।

वैसे, सरकारी आंकड़ों के मुताबिक अभी देश में 47.50 लाख घरेलू श्रमिक काम करते हैं। हालांकि वास्तविक तौर पर यह संख्या कहीं ज्यादा होगी। पंजीयन के बाद इन मजदूरों की सही संख्या का पता चल पाएगा। गैर सरकारी संगठनों के दावे के मुताबिक देश में देश के कुल कामगारों की 20 फीसदी हिस्सा घरेलू श्रमिक के तौर पर काम करता है और इसमें पांचवां हिस्सा पूर्णकालिक मजदूर के तौर पर काम करता है। इनमें से ज्यादातर मजदूर महिलाएं होती हैं। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के मुताबिक घरेलू कामगारों में 83 फीसदी श्रमिक महिलाएं या कम उम्र की बच्चियां होती हैं। ऐसे में स्वास्थ्य योजना के लागू किए जाने से निश्चित तौर पर इन कामगारों का जीवन बेहतर होगा। लेकिन इसके लिए जरूरी यह भी है कि घरेलू कामगारों में इस योजना के बारे में जागरूकता पैदा की जाए। तभी जाकर वे अपना पंजीयन करा पाएंगे और सरकारी सुविधाओं का लाभ उठा पाएंगे। हालांकि अभी से कुछ लोग इस ओर इशारा कर रहे हैं कि क्या सुविधाएं बेहतर होने से घरेलू कामगार अपने काम को जिम्मेदारीपूर्वक निभाएंगे। क्या कामवालियों को सारे प्रावधान के तहत काम करना मंजूर होगा, अभी वे एक दिन में छह छह घरों में काम करती हैं, लेकिन काम के घंटे तय होने से वे एक-दो घरों में ही काम कर पाएंगी।

pradeep_news@rediffmail.com

सभ्यता का पाठ

पम्मी सिंह

घरेलू कामगारों को सम्मान और न्याय मिले

दुनिया मेरे आगे

सर्दियों की ठिठुरती ..... से पानी की ठंडक हाथों को सुन्न कर देती है, कांति (असली नाम नहीं) अपने काम को उसी मुस्तैदी से पूरा करती है। बारिश के दिनों में कभी भीगती हुई, तो कभी पुराने छाते के नीचे किसी तरह खुद को बचाती हुई वह काम पर जरूर पहुंच जाती है। किसी से क्या शिकायत करे! आखिर किसी के पास कहां फुर्सत है उसकी मुश्किलों पर गौर करने की? गर्मी का मौसम मध्यवर्ग को भले चुभता हो, लेकिन उसके लिए शायद यही एक कुछ राहत लेकर आता है। तब रात में झुग्गी पर शीतलहर की मार नहीं होती, न सारी रात बारिश के टपकते पानी को निकालने में गुजरती है।

वह पिछले कई साल से मेरे यहां काम कर रही है। बात-बात में अक्सर अपनी रोजमर्रा की दिक्कतों का जिक्र करती है। इतने सालों में उसकी मुश्किलें कम होने के बजाय बढ़ती ही गई हैं। जिसके कंधों पर पूरे परिवार की जरूरतों और पति की शराबखोरी का बोझ हो, उसे आखिर अपना खयाल रखने का वक्त कहां मिल पाता है! बीमार हो, तब भी काम पर आने की मजबूरी है। कुछ दिन पहले उसने बताया कि किसी जरूरी काम से उसे गांव जाना पड़ेगा। उसके चेहरे पर चिंता की रेखाएं थीं। चिंता इस बात की कि जब वह लौट कर आएगी, तब तक जिन घरों में वह करती है, उनमें से कई में नई काम वाली रख ली जाएंगी। अगर दोबारा उसे उन घरों में नहीं रखा गया तो फिर उसका क्या होगा? अगर लौटते ही फौरन काम नहीं मिला तो उसकी रोजमर्रा की जरूरतों का क्या होगा?

कांति इसका उदाहरण है कि हमारी रोजमर्रा की जिंदगी को आसान बनाने वाली ये महिलाएं कितनी अनिश्चितताओं और असुरक्षा से घिरी रहती हैं। अमानवीय परिस्थितियों के बीच रहना और हर बुनियादी जरूरत के लिए रोज का संघर्ष। वे भी बच्चों का बेहतर भविष्य चाहती हैं, उन्हें पढ़ाना-लिखाना चाहती हैं। लेकिन अधिकतर मामलों में ऐसा चाहना सिर्फ इच्छा रह जाता है। जब कोई चारा नजर नहीं आता, तो वे अपने बच्चों को भी अपने जैसे काम पर ही लगा देती हैं। कांति भी अपने बच्चों को काम पर लाने लगी। ये ऐसे मजदूर हैं, जिनकी हमारे आसपास बड़ी संख्या में उपस्थिति है। वे उच्च-मध्य और मध्यवर्ग की जिंदगी का जरूरी हिस्सा हैं। लेकिन इन वर्गों की चर्चा और चिंता में इन लोगों का कोई अस्तित्व नहीं है। देश में ऐसे मजदूरों की असली संख्या कितनी है, यह किसी को मालूम नहीं है। इनकी मेहनत की कोई तय कीमत नहीं, क्योंकि इनकी गिनती मजदूरों में नहीं होती। इनके लिए न कोई नीति है और न अलग कानून। छोटी उम्र के अनगिनत बच्चे और बच्चियां शहरी घरों में लगभग बंधुआ मजदूर जैसी हालत में काम करने को विवश हैं। न इनके काम के घंटे तय हैं, न कोई छुट्टी का प्रावधान है। पौ फटने से लेकर देर शाम तक काम में जुट रहना ही उनकी दिनचर्या है।

अब इस तबके लिए अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने एक पहल की है। हाल में उसने घरेलू काम करने वाले लोगों की स्थिति, उनके काम के महत्त्व और उनकी बुनियादी जरूरतों पर एक रिपोर्ट जारी की है। इसके मुताबिक विकासशील देशों में ऐसे कामगारों की संख्या कुल मजदूरों में चार से दस फीसद तक है। विकसित देशों में यह एक से ढाई प्रतिशत है। अब भारत में भी कुछ राज्यों ने घरेलू काम करने वाली महिलाओं और पुरुषों के लिए न्यूनतम मजदूरी तय करने की पहल की है। दिल्ली सरकार के श्रम एवं रोजगार मंत्रालय ने यहां की ऐसी कामगार महिलाओं के लिए प्रशिक्षण का एक कार्यक्रम चलाया है, जिसके तहत ऐसी महिलाओं को एक स्मार्ट कार्ड दिया जाएगा, जिसमें उनके बारे में पूरा विवरण होगा। इसके तहत आधुनिक जीवन शैली के जिन उपकरणों का हम उपयोग करते हैं, उन्हें चलाने की जानकारी के साथ-साथ उनके काम के घंटे, वेतन और उनके अधिकारों के बारे भी उन्हें जागरूक बनाया जाएगा।

ऐसी पहल का संदेश यह है कि अगर समाज संवेदनशील और सरकारें जवाबदेह हों, तो घरों में काम करके गुजारा करने वालों की जिंदगी में भी सकारात्मक बदलाव आ सकता है। दिल्ली सरकार की पहल के बारे में कांति का कहना था कि यह अच्छा है, लेकिन लोग तो सर्दियों में गीजर का पानी हमें नहीं देते और वॉशिंग मशीन के बजाय हाथ से कपड़े धोने को कहते हैं। 'जब तक आप लोग नहीं समझेंगे, तब तक क्या फर्क पड़ेगा?' उसका यह वाक्य देर तक मेरे मानस में गूंजता रहा। मुद्दा यही है कि हम अपने सामने के इंसान के प्रति इंसानी नजरिया नहीं रखते। जब तक यह नहीं बदलेगा, सरकारी योजनाएं और कानून कुछ फर्क तो डाल सकते हैं, लेकिन उनसे धन और समाज की श्रेणी में ऊपर बैठे लोगों का व्यवहार कैसे बदलेगा? कांति या उस जैसी अनगिनत महिलाओं से बात करें, तो उनकी पहली अपेक्षा यही होती है कि उनसे लोग मानवीय व्यवहार करें। सभ्यता का यह मूल पाठ तो आखिर कोई कानून नहीं सिखा सकता!

घरेलू कामगारों के भी अधिकार हैं

- उचित वेतन
- उनका सम्मान
- साप्ताहिक छुट्टी
- किसी भी तरह की हिंसा और शोषण नहीं

जागोरी

सी-114, शिवालिक, मालवीय नगर, नई दिल्ली-110017
फोन: 91-11-26691220
फैक्स: 91-11-26691221
टेलीफोन: 91-11-26692700
ई-मेल: jagori@jagori.org
www.jagori.org

खरी-खरी

मनीषा

स्त्रीत्व की उन्मुक्त परिभाषा

'स्लटवॉक' यानी हिन्दी वालों का बेशर्मी मोर्चा नये तरह का आंदोलन है, इसको स्त्रीवादी उन्मुक्तता और बन्धन-मुक्त स्त्रीत्व में नहीं समेटा जा सकता। यह क्रांतिकारी कदम है, नयी लड़की का। नयी सोच का। जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकती, 40-50 वाली औरतें। स्लटवॉक टोरेंटो पुलिस के शऊरदार कपड़े पहनने की गुजारिश के खिलाफ शुरू हुआ वैश्विक आंदोलन है, जिसका कांस्टेबल हिदायत देता है कि अपने खिलाफ होने वाले अपराधों को रोकने के लिए औरतों को स्लट टाइप की ड्रेसिंग से बचना चाहिए। यह कुछ वैसा ही है, जैसे अपने यहां ड्रेस कोड लादे जाते हैं। किरण बेदी लाखों औरतों की आइडियल हैं पर ड्रेसिंग सेंस को लेकर उनके विचार भी कुछ ऐसे ही हैं। वे हमेशा यही कहती रही हैं कि लड़कियों को अपने लिबास को लेकर सतर्कता बरतनी चाहिए। यह बात कुछ हजम नहीं होती। बार-बार औरतों को बताया जाता है कि वे क्या और कैसे पहने। परंपराओं को चुनौती देने वाले ये विचार भले ही उग्र नजर आ रहे हों पर इनकी सोसाइटी को बेहद जरूरत है। खासकर अपनी जैसी दकियानूस सामाजिक विचारधारा पर चोट करने के लिए कोई तो दृढ़ता से आगे आये। हाई-वे से गुजरती लड़कियां बाहुबलियों द्वारा इसलिए उठा कर रेप की जाती हैं कि वे स्त्री हैं। उनको घर से बाहर नहीं निकलना चाहिए, वह भी रात में। क्योंकि रात में मस्ती करने का अधिकार बस पुरुषों को है। यह बेशर्मी नहीं है, यह नया विचार रोपने की जिद भर है। इसको घिनौना स्त्रीवाद बता कर उंगली उठाने वाला शुद्ध मर्दाना विचार है, जिसके बनाये खांचे में खुद को कैद रखने की मशक्कत करने वाली औरत ही शुद्ध है, शालीन है, पवित्र और गुण्वंती है। शर्म-शालीनता-शुचिता की जनाना परिभाषाएं सेट करने वाला मर्द इसकी खिलाफत होते कैसे देख सकता है! जिसने औरत की देह को न सिर्फ प्रोडक्ट माना, बल्कि उसके दिमाग में भी ठूंस-ठूंस कर भर दिया। देह को स्टोर बनाये जाने का इसीलिए उसको मलाल नहीं है, उनकी सुविधानुसार यूज होते रहने के यंत्र मात्र में तब्दील होने पर उसको कोई गिला ही नहीं हो पा रहा था अब तक। मर्द ने हमारी दैहिक, मानसिक जरूरतों को तो समझा नहीं, पर जबरन सेक्स के लोभ में आक्रमणकारी बनता गया। मर्दाना लिप्सा और दरिदगी के कारण हमारा रेप होता है, इस रेप किये जाने के भय से हम सामान्य ढंग से ना तो खुद जी पा रहे हैं और ना ही अपनी बच्चियों को बचा पा रहे हैं। बलात्कृत होने से भयभीत हमारी चेतना/चैतन्यता असामान्य होती जाती है। इन्हीं कुंठित और सेक्सुअल अपराधियों द्वारा हमारी 'हदें' तय की जाती रही हैं। स्लटवॉक को निकली नयी लड़की ना तो बदन उघाड़े है, ना ही उद्दंड। कुछ देशों में अपना विरोध जताते हुए उन्होंने ऊपरी लिबास को सामने से खुला रखा, कुछ लड़कियों ने छाती पर स्लोगन लिखे और कुछ ने अपनी देह पर दूसरों को अधिकार ना दिये जाने की बात बुलंद की। इनमें से कोई भी टॉपलेस नहीं थी, किसी ने भी न्यूड प्रदर्शन की जिद नहीं की। दुनियाभर के स्टारों से पशु-पक्षियों के पक्ष में नग्न प्रदर्शन करवाने वाली संस्था 'पेटा' के खिलाफ मौन रहने वालों को लड़कियों के इस उग्र प्रदर्शन से क्यों घबराहट हो रही है?

हम औरतें हैं इसके लिए कब तक हमको दुत्कारा जाता रहेगा? कब तक हमको शऊर सिखाने की आड़ में पौरुषेय नियमावली ढोते रहना होगा? लैंगिकता के आधार पर औरतों को पीछे धकेलते रहने की जिद या प्रतिस्पर्धा से भयभीत पुरुषों ने जिस भाषा-परिभाषा को रचा, वह स्त्री-विरोधी ही नहीं है, घटिया और छिछले दर्जे की भी है। नो-डाउट, जिसकी शिकार औरतें भी अनजाने ही उन्हीं प्रपंचों में घिर जाती हैं। वे उसी भाषा का प्रयोग करके स्त्री को दुत्कारने में शामिल हो जाती हैं। वे नहीं जानतीं कि चालबाज पुरुषों ने उनकी जुबान पर क्या चस्पा कर दिया है। बुरी औरतें, जिनको छि.. कह कर, बेअदब बता कर, बेशऊर और बेहया कह कर अब तक दुत्कारा जाता रहा है, चुपचाप घुटते रहने को तैयार नहीं रहीं। वे अपने चरित्र प्रमाण-पत्रों पर मर्दाना मुहरें और नहीं बर्दाश्त करने को रेडी हैं। इनको पता है कि मुक्ति की कीमत चुकाने के नाम पर इन्हें और भी ज्यादा यौन हिंसा सहनी पड़ती रही है। औरतों को अच्छी और बुरी कैटेगरी में बांटने वाला अब तक पुरुष था, वह यह चुनाव अपनी सुविधा से कर रहा था। स्त्री-देह उसके आकर्षण का सबसे बड़ा केन्द्र है, जिसको छूने, सहलाने, रौंदने को बेचैन रहता है वह, पर उसी को ढंक-मूंद कर रखने की पाबंदी भी लादता रहा है। इसको कितना ही खौफनाक क्यों ना बताया जाए, पर पुरुष की लोलुपता और उसके यौन-आक्रमणों का शिकार होते रहने के बावजूद लगातार वह मौन रही है। अब उसको हकीकत के घिनौनेपन को उघाड़ने में कोई झिझक नहीं है। वह उन्मुक्त हो चली है। जिसको दूसरे बेशर्मी मान रहे हैं, वह मुक्ति का मार्ग है।

पौरुषेय हथियारों के भरोसे औरतों को डराने वाली साजिशें और पारंपरिक मर्दाना यौन आक्रमण औरतों को भयभीत रखने के लिए अब काफी नहीं रहे। वे चुनौती देने के मूड में आ चुकी हैं। यौनिकता उनके लिए स्त्रीत्व का अदम्य साहस बनने जा रही है। देह-मुक्ति और शुचिता को त्याज्य बनाने का जो साहस उनमें पनपता जा रहा है, वही गढ़ेगा नयी परिभाषा। अपने अधिकारों को छीनने से भी ज्यादा, दबाव मुक्त, शोषण मुक्त जीवन की तरफ बढ़ने की ठसक दिखने लगी है। यही मुक्ति लैंगिक अपराधों, हिंसा और जकड़न से छुड़ाएगी। औरत होने का मतलब अपनी देह को लेकर कुंठित रहना, देह के नायाब हिस्सों को ढंकते-मूंदते फिरना, दबी-दबी रहना, बेमतलब मर्दाना कोष्ठकों की घुटन और उनकी नियमावली जीते रहने के एकतरफा विचार अब जनाना आंख की किरकिरी हो चले हैं। अब उसमें अपनी संतुष्टि को तवज्जो दिये जाने की चाहना बढ़ी है, वह आजादी का स्वाद चखने को लालायित है। बंधन उसकी चेतना को बींध रहे हैं, वह कल्पनाओं और स्वप्निल जज्बातों के भरोसे जीते रहने को तैयार नहीं है। परदों में रहने को विवश की जाती रही औरतों की यह फौज कपड़े नहीं उतार फेंक रही, ना ही बदन उघाड़ रही है बल्कि वह यह भी दबाव बना रही है कि अब वह अपनी मर्जी का लिबास ही पहनेगी। उसको डीप गले का कटाव दिखाने वाली कुर्ती पहनने से पुरुष नहीं रोक सकता, ना ही उनकी लो-वेस्ट जींस से झांकती पैंटी के रंग को देखकर मुंह बिचका सकता है।

ज्यादा समय नहीं हुआ है, जब क्लीवेज को लेकर किसी मौलाना ने धमकी दी थी कि स्तनों की विभाजन-रेखा देख परमात्मा दहल जाता है और जलजले आ जाते हैं, जिसके खिलाफ इंटरनेट पर जबर्दस्त अंतरराष्ट्रीय बहस चली थी जिनमें ढेरों औरतों ने अपने विचार रखे और माना कि अपने कटावों और उभारों को लेकर वे काफी जागरूक हैं और इस पर उनको फख्र है। स्त्री-देह इतनी आकर्षक ना होती तो दुनियाभर में न्यूड आर्टिस्ट ना छाये रहते, ना ही नग्न स्त्रियों की आदम-कद मूर्ति-शिल्प देखने भीड़ उमड़ती। स्त्री के उभार और कटाव ही उसकी देह को आकर्षक और रपटीला बनाते हैं। सपाट औरत आंखों को खटकती है। याद रखें, यहां मैं औरत के सौन्दर्य के तय पैमानों की चर्चा नहीं कर रही। ना ही, उसे किसी पैटर्न में फिट करने की सिफारिश कर रही हूं पर मैं यह मानती हूं कि प्रकृति की बनायी रचनाओं में स्वाभाविक सौन्दर्य-बोध होता है। वे परफेक्ट होती हैं और संरचना में गजब का सामंजस्य होता है। यह सब पुरुष की देह में नहीं है। पुरुष की देह गठीली हो सकती है, मांसल और चुस्त भी नजर आती है पर उसमें मादकता नहीं होती। वह उन्माद नहीं पैदा करती। वह खुद में संपूर्ण नहीं होती। मैं मानती हूं कि हमको पुरुषवादियों द्वारा तय किये गये सौन्दर्य के पैमानों को आंख मूंदे कॉपी नहीं करते रहना है। ना जीरो साइज और ना ही 34-26-36 या 10 साइज के प्रेशर में आना है। फिटनेस, परफेक्शन और नैचुरली जो-जैसी देह हमारी है, उस पर ही हम गर्व करें। पतली कमर, सपाट पेट या उभरी छातियों से पुरुषों को आकर्षित करने की बजाए हमको अपनी देह पर खुद इतराना सीखना होगा। डबल एक्स या ट्रिपल एक्स साइज वाली मॉडलों ने रैम्प पर पोजीशन लेकर फैशन वर्ल्ड को चौंकाया है, पर उन्होंने बाजार को नया खरीदार भी तो दिखाया है, जिसको अपने साइज के फैशनेबल कपड़ों की कमी खटक रही थी। हमारी चिकनी स्किन, चमकीले रंगे हुए बाल, स्टाइलिश ड्रेस अब तक सिर्फ हमें दृश्य बने रहने को मजबूर कर रहे थे। दर्शक तो मर्द रहा है, जिसकी चाहनाओं और मांगों को पूरा करने की धुन में औरत खुद के बारे में सोचने का भी वक्त नहीं निकाल सकी। वह स्त्री देह को भोगने वाला, उसका आनन्द लेने वाले की भूमिका में रहा है। अब तक औरत मौन भाव से दे रही थी, देती जा रही थी। अब उसको अपनी जरूरतों का अहसास हो चला है। अपनी जरूरतें अपनी शर्तों के साथ पूरी करने की धुन है यह। औरतों को सजने-संवरने में उलझा कर पुरुषों ने अपने नैन-सुखीपन की जिस आदत को पीढ़ियों भोगा है, उसकी एक्सपाइरी होती दिख रही है। उसकी फब्तियों के डर से सिकुड़ने की आदत छोड़, आंख में आंख डाल कर धमकाना होगा। उन पर बेझिझक यह दबाव बनाते चलना होगा कि ना तो हमको तुम्हारी दया की जरूरत है और ना ही सहारे की। हमको ठोकरें लगेंगी पर हम खुद संभलना सीखेंगे। हम चुटहिल होते रहेंगे, पर तुम्हारे दिये जख्मों पर लजाने और जलालतें झेलने के लिए तैयार नहीं रहेंगे। यह कितना हास्यास्पद है कि पुरुषों का छोटा सा समूह खिलाड़ियों की स्कर्ट का साइज तय करने की हिमाकत करने वाले संगठन का कर्ता-धर्ता है, इस सभ्य कहलाने वाले समाज में वह बेशर्मी से आदेश दे रहा है। ये तो बूचड़खानों से भी ज्यादा दरिदगी फैलाने वाले विचार हैं। यह सोच कर लोगों को बुरा क्यों नहीं लगता कि जब नस्लवादी या धार्मिक कट्टरता के खिलाफ बात उठती है तो सभी एक सुर में प्रलापने लगते हैं पर औरतों के विरोध में होने वाले अपराधों, बातों और घटनाओं के खिलाफ मानवतावादी भी आगे नहीं आते। जानवरों और पर्यावरण के लिए लड़ने वालों को क्या औरतें उनसे भी गई-बीती लगती हैं? बुरी, खराब या बेशर्म औरतें ही क्यों होती हैं? पुरुषों के लिए ये विशेषण क्यों नहीं? हर लड़की को सेक्स प्रोडक्ट के रूप में देखने वाला पुरुष भला है? यंग लड़की के चेहरे से सीधा उसकी छाती पर निगाहें अटकाने वाला चरित्रवान है? अपनी तरंगों को काबू ना कर पाने वाले, पौरुषवान, वीर्यवान, यशस्वी, उर्वर पुरुषों की सुविधानुसार तन और मन से

स्कॉटलैंड

टोरंटो

ब्राजील

इनको पता है कि मुक्ति की कीमत चुकाने के नाम पर इन्हें और भी ज्यादा यौन हिंसा सहनी पड़ती रही है। औरतों को अच्छी और बुरी कैटेगरी में बांटने वाला अब तक पुरुष था, वह यह चुनाव अपनी सुविधा से कर रहा था। स्त्री-देह उसके आकर्षण का सबसे बड़ा केन्द्र है, जिसको छूने, सहलाने, रौंदने को बेचैन रहता है वह, पर उसी को ढंक-मूंद कर रखने की पाबंदी भी लादता रहा है।

ढलती चली आ रही औरत के लिए नये प्रतिमान गढ़ना उतना दुष्कर भी ना होता, जितना हो रहा है क्योंकि अभी तो ज्यादातर औरतों को अहसास ही नहीं है कि पुरुषों को 'खुश/संतुष्ट' रखने के लिए उन्होंने अपनी हस्ती ही मिटा दी और उनको यह जताने/बताने का साहस दे दिया कि हम दोयम हैं, दूसरे दर्जे की नागरिक। कमजोर, दया मांगती। आश्रित और छाया बनी। यही मिथक तोड़ने का प्रयास है यह।

पिंक चड्डी वाले विरोध को अभी कुतर्की भूले नहीं होंगे, वे भूल भी नहीं सकते। यह विरोध नकारात्मक है पर यह भी तो सच है ना कि जो मर्द करते रहे हैं, वह भी कोई सकारात्मक नहीं है। यह मुट्ठीभर उपद्रवी औरतों/लड़कियों का शिगूफा भर नहीं है, यह प्रतिरोध की ज्वाला है, जो सारी दुनिया को अपनी चपेट में ले चुकी है। तालिबानी फतवों और कट्टरता के बावजूद अफगानिस्तान में औरतें ड्राइविंग कर रही हैं। उनको चालान चुकाने में कोई दिक्कत नहीं क्योंकि यह कीमत वे आजादी के लिए दे रही हैं इसको गांधीवादी तरीका ना भी मानें, तो है तो यह अहिंसक आंदोलन ही है! जो औरतों की वैचारिकता से पारंपरिक समाज को झकझोरने का वह काम कर पा रहा है, जिसको वातानुकूलित हॉलों में बैठकर दिये जाने वाले जोशीले भाषणों से कवर नहीं किया जा सकता। जब थके हुए, निढाल पुरुष औरतों को आरक्षण देने से सकुचाते नजर आ रहे हैं, तभी वे इस खुर्राट सामाजिक व्यवस्था को आईना दिखा रही हैं। जिनको किसी सुविधा की दरकार इस दकियानूस मर्दाना सिस्टम से नहीं रही, वे अपनी लड़ाई खुद लड़ सकती हैं।

निशुल्क प्रतियों के लिए संपर्क करें -

जागोरी बी-114 शिवालीक मालवीय नगर, नई दिल्ली-110017, फ़ोनः 26691219, 26691220

email: resource@jagori.org/jagori@jagori.org

www.jagori.org

जागोरी JAGORI

ICCO-EED के सहयोग से प्रकाशित।